आधुनिक सहकारिता

—सहकारिता और उसके आधार पर राष्ट्र की नव-रचना—

विद्यासागर शर्मा

●

१९६०

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार १६६०
मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
बालकृष्ण, एम० ए०,
युगान्तर प्रेस,
डफरिन पुल, दिल्ली

प्रकाशकीय

सहकारिता के महत्व एव उपयोगिता के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नही है। सब जानते है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और बिना पारस्परिक सहयोग के न उसका जीवन चल सकना सभव है, न समाज का अस्तित्व ही रह सकता है। समाज का उद्देश्य कुछ भी हो, उसकी पूर्त्ति मनुष्यो के सामूहिक प्रयत्न से ही हो सकती है।

सहकारिता का विधिवत् प्रयास ससार के अनेक देशो मे हो रहा है। कही-कही तो उसका आदोलन प्रौढावस्था को प्राप्त हो गया है। हमारे देश मे भी उसका श्रीगणेश हो चुका है और उसकी जडे चारो ओर फैलती जा रही है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने इस विषय का वडी वारीकी से अध्ययन और चिन्तन किया है। उनकी दो पुस्तके 'भारतीय सहकारिता का इतिहास' और 'सहकारिता का उदय और विकास', जो 'मण्डल' से प्रकाशित हुई है, पाठको को बडी लाभदायक सिद्ध हुई है।

हमे विश्वास है कि उस माला की इस अतिम पुस्तक से सहकारिता के वर्त्तमान रूप और प्रयोग को समझने मे वहुत सहायता मिलेगी। हिन्दी मे इस प्रकार के साहित्य का वडा अभाव है। लेखक ने उस दिशा मे निस्सदेह अच्छी सेवा की है।

हम आशा करते है कि इस पुस्तक का सर्वत्र स्वागत होगा।

—मंत्री

दो शब्द

हमारे देश मे सहकारिता-सबधी साहित्य बहुत कम है। जो है, उसमे भी अधिकाश अग्रेजी मे है। भारत के कोटि-कोटि निवासियो के जीवन से इस विषय का घनिष्ठ सबध होने के कारण आवश्यक है कि हिन्दी मे ऐसे साहित्य का अधिकाधिक सृजन हो।

हमने अपने सविधान मे भारत को समाजवादी सहकारी सघीय राज्य घोषित किया है। आवडी के काग्रेस-अधिवेशन मे उसके सिद्धान्त इस प्रकार निश्चित किये गए है —

"भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का उद्देश्य भारतवासियो की भलाई और उन्नति करना तथा भारत मे शान्तिमय एव वैध उपायो से ऐसे समाजवादी सघीय सहकारी स्वराज की स्थापना करना है, जिसका आधार सबके लिए समान अवसर और समान राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार हो और जिसका लक्ष्य विश्व-शाति एव विश्व-बन्धुत्व की स्थापना करना हो।

समाजवादी तथा साम्यवादी भी सहकारिता की ओर झुक रहे है। आचार्य विनोबा ने तो शासन-निरपेक्ष समाज के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सहकारिता को आवश्यक अग माना है। सहयोग साम्ययोग की प्रथमावस्था है। ऐसी अवस्था मे सहयोग तथा सहकारिता के मूल स्वरूप तथा उसके प्रयोग को समझना, उस पर विचार करना और उन विचारो का प्रचार करना वाछनीय है। प्रस्तुत पुस्तक उसी दिशा का एक विनम्र प्रयास है।

'सहकारिता का उदय और विकास' तथा 'भारतीय सहकारिता का इतिहास' लिखने के बाद जब मैं इस क्रम की अन्तिम पुस्तक लिखने लगा तो उसमे विशेष कठिनाई मालूम हुई। सहकारिता नए युग मे प्रवेश कर रही थी और उसकी धारणाए नित्य-प्रति विकसित हो रही थी। इसके अतिरिक्त सहकारिता-सबधी जो साहित्य उपलब्ध था, उसकी मूल प्रेरणा विदेशो से ली गई थी।

इस पुस्तक मे सहकारिता के विवरणात्मक भाग के लिखने मे अधिक कठिनाई नही हुई, परन्तु देश की परिस्थितियो तथा परम्पराओ के अनुकूल किस

प्रकार विभिन्न क्षेत्रो मे सहकारी रूप में कार्य हो, यह बताना बडा मुश्किल काम था। इसमे मुझे अपने इस क्षेत्र के अनुभवो, अपने मित्रो, देशी-विदेशी लेखको, भारत सरकार की नीतियो, रिजर्व बैंक की रिपोर्टो आदि से बहुत सहायता मिली है। किसानो के साथ विचार-विनिमय से भी बडी लाभप्रद सामग्री प्राप्त हुई। इन सब स्रोतो का मै आभारी हू। श्री खेमीराम (असिस्टेंट रजिस्ट्रार, सहकारी विभाग एजूकेशन, हिमाचल प्रदेश) का तो बहुत ही ऋणी हू, जिनके साथ अनेक विषयो पर मै विचार-विमर्श कर सका। इसमे सन्देह नही कि कई बातो मे मेरा उनसे अभी तक मतभेद है, परन्तु विचारो के स्पष्टीकरण तथा परिमार्जन मे उनकी सहायता अमूल्य रही।

सहकारिता की परिभाषा, इसके प्रयोग, आन्दोलन, विभागीय सगठन तथा विभाग एव आन्दोलन के पारस्परिक सम्वन्धो के बारे मे कुछ नये-नये दृष्टिकोणो को अपनाया गया है। इन सुझावो पर श्री चेस्टर, सी० डेविस, श्री डारलिग, तथा आचार्य विनोबा के विचारो की गहरी छाप है। अत इन महानुभावो का भी मैं हृदय से आभारी हू।

—विद्यासागर शर्मा

विषय-सूची

आधुनिक
सहकारिता

आधुनिक सहकारिता

: १ :

सहकारिता की परिभाषा

यह तो सर्व विदित ही है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसमे सृष्टि के प्रारम्भ से समाज तथा दोस्तो के ससर्ग मे रहने की एक भूख विद्यमान रही है। यहीं भूख विभिन्न प्रकार के सगठनो मे प्रकट होती रही। इसी भूख के प्रभावाधीन परिवार की सृष्टि हुई, वर्ण तथा जातिया बनी, राष्ट्रो का निर्माण हुआ; सेनाए सगठित हुई, युद्ध हुए, कई प्रकार के सामाजिक व आर्थिक ढाचे बने। और जहा यह भूख मानव-समाज को एकत्र होने की प्रेरणा देती रही वहा इसी भूख ने सगठित हुए समूहो अथवा राष्ट्रो को आपस मे लडाया। एक शक्ति-सम्पन्न समूह ने दूसरे निर्बल समूह को अपने अधीन करके उसे दु खी और त्रस्त कर उसका शोषण किया।। ऐसी ही बाते राष्ट्रो के सबध मे है। आर्थिक जगत मे भी वर्गो तथा समूहो की रचना हुई। शोषक तथा शोषित वर्गो का एक ऐसा चक्र चला कि सारा ससार एक भयकर षड्यन्त्र का अग-सा दीखने लगा और मजबूर मानव सहसा काप-सा उठा।

ऐसी ही भयावह परिस्थितियो से मानव को बचाने के लिए ही भारत के ऋषियो ने काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष की पद्धति का निर्माण किया। धर्म का एक ऐसा अनुशासन बना दिया था जहा मानव को प्रथम मानव समझा जाता था और इस ही एक आधार पर समाज के समस्त सगठनो का निर्माण होता था।

इस अनुशासन ने भारत मे समाज को राजा की क्रूरता तथा धनवानो के अत्याचार से बचाने की पर्याप्त सफलतापूर्वक चेष्टा की। परन्तु शनै-शनैः धर्म

का यह अकुश धन तथा राजबल के आगे क्षीण होता गया और जहा राजनीतिक शोषण के विरुद्ध विभिन्न विचारधाराओ का प्रादुर्भाव हुआ वहा आर्थिक जगत मे भी साम्य तथा समाजवाद की पद्धतिया चली। परन्तु यह विचारधाराए राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति के बिना अपनी सफलता मे विश्वास नही करती थी। और यह श्रेय उन कतिपय मौलिक कार्यकर्ताओ को ही रहा जिन्होने कम तथा सीमित आय वाले लोगो को आवश्यकता की शक्ति के अधीन स्वावलम्बन के मूलभूत सिद्धान्त पर सगठित किया। क्योकि यहा मजबूर तथा निर्बल लोग आपस मे मिल-जुलकर कार्य करते थे, अत इसका नाम 'सहकार' पड गया। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अधीन सहकार की परिभाषा का भी निर्माण हुआ और वह भी समय की गति के अनुसार परिवर्तित होता रहा। सहकारिता की परिभाषा लेखको, राजनीतिज्ञो तथा विधान बनाने वालो ने की। इन्ही परिभाषाओ के सक्षिप्त विवरण का उल्लेख इस परिच्छेद का आशय है।

श्री होली ओक सहकारिता की व्याख्या करते हुए लिखते है

> "यह एक ऐच्छिक सगठन किसी भी कार्य या व्यवसाय करने के लिए है जिसमे सम्बन्धित व्यक्ति न्यायपरता से भाग लेते है और उन पर न्यायसगत नियत्रण रहता है।"

यूरोप मे सहकारिता का जन्म उस युग मे हुआ जब कि वहा धन से ही सब मूल्य आके जाते थे। मानव का समस्त जीवन वस्तुत धन की कृपा पर निर्भर था। इसीलिए उस काल की सहकारिता की परिभाषाओ मे निर्धनता से दबे हुए असहाय मानवो की आर्त पुकार सुनाई पडती है। सहकारिता के गहन विचारक तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्री सी आर फे "सहकारिता" की परिभाषा करते हुए लिखते है

> "दान तथा सहकारिता का पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा ही है जैसे कि इलाज का पथ्य अथवा बचाव का विधि के साथ। इसका ध्येय है निर्बलो को ऊपर उठाना। सहकारिता का सम्बन्ध व्यापार से न होकर व्यापार-विधि से होता है और इसी कारण इसका क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाता है जितना कि जीवन-व्यापार का।"

आगे चलकर यही महोदय लिखते है

> "सहकारिता मे व्यापार के सब अग शामिल है। ' यह एक ऐसी

व्यापारिक सस्था है जिसका जन्म निर्बलो मे होता है, जहा सर्व कुछ निस्वार्थ भावना से किया जाता है, और जहा लाभ उक्त सगठन के अनुपात से बटता है।"

सहकारिता की शोधित परिभाषा करते हुए यही महोदय लिखते है :

"सहकारी सभा आर्थिक तौर पर निर्बलो का साँझे व्यापार हेतु निस्वार्थ भाव से कार्य करने वाला सगठन है जिसमे सब सदस्य काम की जिम्मेदारी सभालते है।"

फिनलैण्ड की सहकारिता की व्याख्या करते हुए एक लेखक ने यो लिखा है

"सहकारी सस्था व्यक्तियो का एक ऐसा सगठन है जहा सब समता की भावना से सम्मिलित होते है। जहा सदस्य-सख्या पर कोई प्रतिबन्ध नही होता। जिसका उद्देश्य यह होता है कि मिलकर सदस्यो की आर्थिक स्थिति सुधारी जाए और पारस्परिक सहायता तथा स्वावलम्बन के सिद्धातो पर काम करे। जहा लाभ व्यवसाय मे कार्य-भाग लेने के अनुपात से वितरित होता है, न कि लगाई गई धनराशि के अनुपात पर।"

श्री हैरिक्क ने इसी विचार को और भी पुष्ट किया है

"सहकारिता स्वेच्छा से सगठित हुए व्यक्तियो का अपनी शक्तियो तथा अपने साधनो को एक दूसरे के हित के हेतु प्रयोग मे लाने का कार्य है।"

सर हौरेस प्लकिट ने सहकारिता की परिभाषा यो की है .

"सहकारिता सगठन द्वारा स्वावलम्बन को प्रभावपूर्ण बनाने की विधि है।"

ग्राम विकास पर लिखते हुए आईसलैण्ड के एक लेखक ने लिखा है

"सहकारी सस्था की परिभाषा मे कहा जा सकता है कि यह व्यक्तियो का स्वेच्छापूर्वक सगठन है, जो कि अपने आर्थिक तथा सामाजिक विकास हेतु मिलकर धन प्राप्ति के साधनो का साझे स्वामित्व तथा लोकतत्री पद्धति के अधीन प्रबन्ध करते है।"

सर्व श्री एच एच बेक्कन तथा एम ए. शार अपनी पुस्तक मे लिखते है —

"आर्थिक पद्धति के फलस्वरूप ही सहकारी सगठन का प्रादुर्भाव

हुआ है। यह योजना सम्पन्न आर्थिक तथा खुले व्यापार के वाछित गुणो का सग्मिश्रण है। इसमे इन पुरानी दोनो पद्धतियो के अवाछनीय दुर्गणो का यथासम्भव निराकरण किया गया है। सहकारिता लोकतत्र की भित्ति को विस्तृत करती है। उसे अर्थ तथा समाज के क्षेत्रो मे प्रयुक्त करके उन सबको, जिनमे मनुष्यो के कार्यो को पारस्परिक सम्वन्ध पर आयोजित करने की क्षमता है, लाभ पहुचाती है।"

कहना नही होगा कि पजाव के भूतपूर्व सहकारी विभाग के रजिस्ट्रार श्री कैलवर्ट महोदय सहकारिता के क्षेत्र मे विश्व-विख्यात व्यक्ति है। उनका कहना है :

"सहकारिता एक प्रकार का सगठन हे जहा व्यक्ति स्वेच्छा से मानवता के आधार पर वरावरी के नाते से अपने आर्थिक हितो के विकास हेतु शामिल होते है।"

श्री एम माथुर ने इन सव परिभापाओ का निष्कर्ष निकालते हुए अपनी परिभाषा यो की है -

'सहकारिता, पारस्परिक सहायता द्वारा स्वावलम्वन के ध्येय की उपलब्धि हेतु किया गया एक जनतत्री सगठन है, जिसमे सम्मिलित व्यक्ति अपने साझे आर्थिक हितो का सरक्षण तथा सवर्धन कर सकते है।"

उपरिलिखित विशेषज्ञो द्वारा की गई सहकारिता की परिभाषाओ के उद्धरणो पर ही सतोष करते हुए इसी विपय पर सहकारी अधिनियमो आदि का एक विहगम अवलोकन भी लाभप्रद ही रहेगा क्योकि समय के साथ जो परिवर्तन सहकारिता की धारणा मे होते रहे है, उनकी छाप इन विधानो तथा अधिनियमो मे दी गई परिभापाओ मे प्रत्यक्ष दिखाई देती है। सन् १९२१ के जापान के सहकारी विधान मे सहकारी समिति की परिभाषा यो की गई है

"सहकारी समिति एक सगठन है, जिसका वैध अस्तित्व है और जिसमे सीमित साधनो वाले व्यक्ति इसलिए शामिल होते है कि वे सामूहिकता के सिद्धान्तो पर काम करके अपने आर्थिक स्तर को विकसित तथा उन्नत कर सके।"

सन् १९११ के व्रिटिश-कोलम्विया कृषि सघ के अधिनियम मे लिखा है

"वह सगठन सहकारिता के सिद्धान्तो पर निर्मित समझा जायगा जिसके नियन्त्रण-पत्र तथा उपविधियो मे सदस्य उत्पादको को लाभ मे

से उस उत्पादन को जो सगठन को दिया गया हो,'के अनुपात पर भागीदार रखा गया हो तथा जहा भागो की पजी पर ६ प्रतिशत से अधिक लाभ न वाट जाता हो।"

आस्ट्रिया के विधान मे इसी सगठन की व्याख्या यो की है·

"सहकारी समिति एक ऐसा सगठन है जिसमे सदस्यो की सख्या पर कोई प्रतिबन्ध न हो और जिसका ध्येय ऋण द्वारा उद्योग तथा व्यापार को विकसित करना हो।"

रूमानिया के विधान मे लिखा है·

"सहकारी समिति एक ऐसा सगठन है जिसकी पूजी परिवर्तनशील होती है, सदस्य सख्या पर कोई प्रतिबध नही होता और जो जब चाहे इसमे शामिल और जब चाहे पृथक् हो सकता है। इसका ध्येय यह होता है कि सब एक निश्चित योजनानुसार काम करे जिससे सदस्यो का सामाजिक तथा आर्थिक विकास हो।"

स्विटजरलैंड के विधानाधीन सहकारी सभा की व्याख्या इस प्रकार है

"सहकारी समिति अनिश्चित सख्या के सदस्यो का सगठन होता है। जिसका ध्येय यह होता कि सदस्यो का सामूहिक प्रयत्न द्वारा आर्थिक विकास हो।" भारतीय सहकारी विधान की धारा ४ मे सहकारी समिति की व्याख्या करते हुए लिखा है

"सहकारी समिति सदस्यो के आर्थिक हितो के सरक्षण तथा विकास हेतु बनाई जाती है और वह सहकारिता के सिद्धान्तो पर कार्य करती है।"

समय की प्रगति के साथ भारत मे भी इस परिभाषा मे विकास होता रहा है और भिन्न-भिन्न राज्यो ने इस परिभाषा मे कुछ परिवर्तन किये है। यह परिभाषा हर अधिनियम की भूमिका मे मिलती है। भारतीय सरकारी अधिनियम १९१२ की भूमिका मे लिखा है·

"कृषको, कलाकारो, श्रमिको तथा सीमित आय वाले लोगो मे बचत तथा स्वावलम्बन के भाव उन्नत करने के लिए सहकारी समितियो के सगठन को सुलभ बनाने के लिए यह विधान बनाया जाता है।"

सन् १९२५ के बम्बई के सहकारी अधिनियम मे विधान के ध्येय की व्याख्या यो की गई है

कृषको तथा अन्य साझे हितो वाले जनसमूहो मे बचत, स्वावलम्बन तथा पारस्परिक सहायता के भाव विकसित व उन्नत करने और उनमे उत्कृष्ट जीवन, श्रेष्ठ व्यापार और उत्पादन के बेहतर उपाय प्रयोग मे लाने के लिए सहकारी समितियो के सगठन तथा सचालन हेतु यह अधिनियम बनाया जाता है।"

सन् १९३२ के मदरास के सहकारी अधिनियम की भूमिका मे उद्देश्य प्रदर्शित करते हुए लिखा है

"कृषको तथा साझी आवश्यकताओ वाले अन्य व्यक्तियो मे बचत, स्वावलम्बन तथा पारस्परिक सहायता के भावो को उन्नत करने, जीवन को अच्छा बनाने, व्यापार को सुचारु रूप प्रदान करने के लिए तथा उत्पादन के श्रेष्ठ उपाय प्रयोगमे लाने के लिए सहकारी समितियो को सगठित किया जाय।"

सन् १९४० के बगाल सहकारी अधिनियम मे इसी विषय पर लिखा है

"मध्यम वर्ग के साधनो वाले तथा साझे हितो वाले व्यक्तियो मे बचत, स्वावलम्बन तथा पारस्परिक सहायता के भावो को जागृत करके, उनमे उत्कृष्ट जीवन तथा उत्पादन व व्यापार हेतु श्रेष्ठ उपाय प्रयोग मे लाए जाय।"

अभी तक सहकारिता कम आमदनी वाले तथा साझे हितो वाले वर्गो तक ही सीमित समझी जाती थी। भारत मे तो केवल कृपको के लिए ही इस की उपयोगिता शुरू-शुरू मे समझी गई थी, परन्तु समय के परिवर्तन के साथ सहकारिता का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। यहा तक कि जो आन्दोलन केवल कम आय वाले व्यक्तियो के लिए ही समझा जाता था, उसमे बम्बई के सुरैया सरीखे धनाढ्य शामिल हुए और आन्दोलन को पर्याप्त शक्ति प्रदान की। ऐसा होना भारतीय परम्परा के अनुकूल ही था, क्योकि भारत मे धनिक को समाज का अमानतदार समझा जाता रहा है। और सहकारिता ने धनिक को एक ऐसा साधन दिया है जिससे कि वह किसी प्रकार की हानि की आशका उठाये बिना अपना धन कम आय वाले तथा आर्थिक तौर पर उत्पीडित व्यक्तियो की सहायता तथा उन्नति के लिए प्रयोग मे ला सकता है।

आवश्यकता ने सहकारिता के आन्दोलन को जन्म दिया। अत विभिन्न देशो

वश्यक सोपान है और इसी सम्बन्ध मे विनोबा जी की शिष्या विमला बहन ने एक स्थान पर कहा है—

> "मनुष्य मात्र समान है। यह भावना आस्तिकता से पैदा होती है। उससे दूसरी अवस्था निष्पन्न होती है जिसे हम 'सहयोग' कहते है। उसका मूलभूत सिद्धान्त यह है कि जीवन का तत्त्व आपसी सघर्ष नही, वरन् सहयोग है। जीवन का विकास विद्वेष से नही प्रेम से होता है। यह सहयोग वृत्ति ही वास्तविक जीवननिष्ठा है। विद्वेष और सघर्ष से क्रान्ति नही होती, स्थिति मे अन्तर पडता है। परतु वह चिरकाल तक नही टिकता। ऐसी क्रान्ति प्रतिक्रान्ति को जन्म देती है और अपने आत्मघात की योजना स्वय करती है। इसलिए स्नेह और सहयोग की भावना तथा आचार अहिंसात्मक प्रक्रिया की दूसरी अवस्था है।"

पूर्व लिखित पक्तियो मे हमने जिस शब्द सहकारिता की परिभाषा पर ऊहापोह की है, उसके शब्दार्थ पर भी थोडा विचार करना लाभप्रद ही रहेगा। सहकार शब्द 'सह' और 'कार्य' दो शब्दो से मिलकर बना हे जिसका अर्थ है—मिलकर कार्य करना। अगरेजी शब्द को-आपरेशन का भी लगभग यही अर्थ है। 'सहयोग' इसका अधिक पर्यायवाची होगा। इस सहयोग की भावना का उदय होता है स्नेह मे, और स्नेह की उत्पत्ति होती है समस्त मानवो की मौलिक समानता की भावना मे, जहा पर जीवन के लिए "आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत" के सिद्धान्त का प्रयोग स्वाभाविक तथा आवश्यक हो जाता है।

वर्तमान युग मे सहकारिता का उदय एक बडी सीमित धारणा से हुआ, जैसा कि पूर्व पृष्ठो मे दी गई परिभाषाओ से प्रकट है। इसमे सन्देह नही कि सहकारिता का उदय इस सत्य का पोषक है कि जब अमानवीय तथा आक्रान्त करने वाली शक्तियो से विवश श्रमिक और किसान को कही कोई सहायता तथा आश्रय न मिला तो इस विचारधारा ने ही विवश और त्रस्त मानव समुदाय को आशा की किरण दिखलाई।

इस प्रकार एक सीमित वातावरण तथा असाधारण परिस्थितियो मे जन्म लेकर सहकारिता की धारणा विकसित होती गई और आज यह समाजवाद, साम्यवाद तथा पूजीवाद के सघर्ष मे मानव समाज को आशा का सन्देश सुनाकर एक सफल मध्यवर्ती मार्ग का स्थान प्राप्त कर चुकी है।

अब वह समय नही रहा कि हम पूर्वकाल की सहकारिता की सकीर्ण परिभाषाओ पर सन्तोष करके बैठ जाय। फ्रास के सुप्रसिद्ध लेखक तथा विचारक रूसो ने अपने ग्रन्थ 'सोशल काट्रेक्ट' मे सहकार्य के मौलिक विकास का वर्णन करते हुए इसके उपादेय स्वरूप का वर्णन किया है। मानव स्वभाव के इस प्राकृतिक गुण की व्याख्या विभिन्न विचारक तथा लेखक भिन्न-भिन्न नाम देकर भिन्न-भिन्न भाषा मे कर चुके है। इस विचारशैली की परिभाषा भी इसलिए इतनी ही उदात्त, उदार तथा वैसे ही सर्वांगीण होनी चाहिए जितना व्यापक इसका स्वरूप है। अत इसकी परिभाषा निम्न शब्दो मे ही मुक्त होगी

> "सहकार अथवा सहकारिता एक ऐसी पद्धति है जो मानव की मानव के प्रति स्वाभाविक स्नेह की भावना को पुष्ट करके 'सबके बहुत भले' के पावन सिद्धान्त को कार्यान्वित करने की क्षमता रखती है।"

और यदि हम इसी मूलभूत धारणा को सामने रखे तो हमे 'सहकारी समिति' की परिभाषा का भी परिमार्जन करना पडेगा। और यदि आज तक सहकारिता एक आन्दोलन के रूप मे वाछित सफलता प्राप्त करने मे असमर्थ रही तो इसका कारण केवल यही है कि हमने इस उदात्त तथा उदार भावना को सकीर्ण तथा दलगत विचारो की कैद मे बन्द करके इसकी प्रगति को स्वय कुण्ठित कर दिया। हमने समाज को छोटे-छोटे टुकडो तथा वर्गो मे बाटने की कुचेष्टा की। खाइयाँ पाटने के स्थान पर हमने उनको और बढाया। वर्गो तथा व्यक्तियो के बीच हमने सहकारिता के नाम पर दीवारे खडी करदी। हमने एक-एक जाति व वर्ग को प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध पृथक्-पृथक् सहकारी समितियो मे बाटा। हमने एक वर्ग, जाति, व्यवसाय व ग्राम की सहायता करने से रोका। अब समय की माग है कि हम सत्य को पहचाने और सकीर्णता से बाहर निकलकर प्रकृति की खुली स्वास्थ्यदायक वायु मे विचरे। इन विचारो के अनुसार हमे अपने अधिनियमो की प्रस्तावना तथा सहकारी समितियो की व्याख्या को भी बदलना होगा ताकि उसमे वस्तुत सहकारी तत्वो का समावेश हो सके। जिससे यह आन्दोलन एक निर्मल तथा स्वच्छ झरने व जल-स्रोत की भाति निरन्तर प्रगतिशील रहकर व्यक्तिरूपी बूद-बूद का समावेश करके एक बडी नदी का रूप धारण करता हुआ अन्त मे सागराकार हो जाय।

: २ :

सहकारी समिति

सहकारिता तथा सहकारी समिति की परिभाषा पूर्व पृष्ठो मे दी जा चुकी है। परन्तु सहकारिता के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रयोग पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि सहकारी समिति के तन्त्र पर भी विचार कर ले। क्योकि इस तन्त्र को समझे बिना हम आन्दोलन के क्रियात्मक रूप को ध्यान मे नही ला सकते। सहकारी समिति का सगठन प्रतिदिन एक ही अधिनियम तथा एक ही प्रकार के नियमो के अधीन होता है। कार्य-पद्धति, कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व भी एक से ही होते है। भारत मे सर्व प्रसिद्ध तथा प्रचलित भावना ऋण सबधी ही है। अत इस अध्याय मे इसी से सबधित जानकारी दी गई है।

ऋण सबधी सहकारी सस्था के प्रारभिक स्तर दो प्रकार के होते है—एक असीमित उत्तरदायित्व वाली और दूसरी सीमित उत्तरदायित्व वाली।

(१) असीमित उत्तरदायित्व वाली समिति वह होती हे जिसका हर सदस्य अपनी कुल सम्पत्ति की सीमा तक समिति के ऋण के लिए उत्तरदायी होता है। इस प्रकार की समितिया आज तक ग्रामो मे कायम होती रही। ऋण सबधी कार्य के लिए आज तक ऐसी समितियो के पक्ष मे ही विचार रहा। क्योकि यह ख्याल किया जाता है कि इस प्रकार का उत्तरदायित्व रखने से समिति के सदस्य ऋण के आदान-प्रदान मे सावधानी बरतते है और ऋण की वापसी मे भी सुविधा रहती है।

(२) सीमित उत्तरदायित्व वाली समितियो मे हर सदस्य की जिम्मेदारी एक निश्चित सीमा तक अर्थात् अपने भाग के मूल्य तक अथवा उसके निर्दिष्ट गुणा तक सीमित होती है। अर्थात् समिति का हर सदस्य ऋण के लिए एक निर्धारित सीमा तक उत्तरदायी होता हे। उसकी समस्त सम्पत्ति उसके लिए उत्तरदायी नही होती।

इस प्रकार की समितिया या तो समितियो के मिलने से वनती हे अथवा स्टोरो मे इस शैली का अनुकरण किया जाता हे। परन्तु अब सगठित ऋण अनुसरण करने पर ग्रामो की प्रारम्भिक समितिया भी सीमित उत्तर-

स्थान पर पृथक् किया गया है।

चूकि भारतीय किसान गरीब होता हे, अत यह भी विधान रखा जाता है कि भाग धन-राशि अर्थात् हिस्सो का रुपया किस्तो द्वारा अदा किया जाय। अधिक से अधिक १० वर्ष की अवधि रखी जाती हे। और यह इसलिए भी होता है कि सहकारी समिति व्यक्तियो का एक सगठन है, न कि धन का, इसलिए यह प्रतिवन्ध रहता है कि कोई व्यक्ति निर्धारित राशि से अधिक हिस्से नही खरीद सकता ताकि सस्था पर मानवता का प्रभाव रहे, न कि धन का।

मत—सहकारी समिति मे हर सदस्य का एक मत होता है, भले ही उसने कितने ही हिस्से खरीद रखे हो।

ऋण—ऊपर लिखा जा चुका हे कि हिस्मे अथवा शेयर वेचकर समिति के पास जो धन-राशि जमा होती है वह पर्याप्त नही होती। इस राशि को वढाने का एक उपाय होता है अमानते जमा करना। यह अमानत मामूली व्याज के दर पर जमा कर ली जाती है और समिति की ऋण प्रदायक शक्ति को वढाती है। अमानतो पर ३% से ४% व्याज दिया जाता है। और जव अमानत पर इतना व्याज हो नो समिति सदस्यो से ६% से ९% तक व्याज लेती है। अमानत जमा करने से सदस्य एक ओर वचत के स्वभाव को पुष्ट करते हैं और दूसरी ओर समिति के सहकारी कार्यो को शक्ति प्रदान करते है। वैंक साधारणतया ६% व्याज पर सहकारी समितियो को ऋण देते है। ग्रामीण किसान की ऋण सवधी समस्या को सुलझाने के लिए ग्रामीण साख समिति के प्रस्तावानुसार सहकारी वैंको को रिजर्व वैंक १½% पर ऋण देगा जो ६% तक समिति के सदस्यो को मिल सकेगा।

हर ऋण के प्रार्थना-पत्र पर प्रवन्धक-समिति विचार करती है। वह यह देखती है कि आवश्यकता उचित है या नही और माग उनकी अधिक से अधिक ऋण देने की सीमा के अदर-अदर है या नही ? समिति का सदस्य वनने पर हर सदस्य की सम्पत्ति के आधार पर उसे अधिक से अधिक ऋण देने की सीमा निर्धारित की जाती है क्योकि ऐसा करना आवश्यक होता है। इस अधिकतम ऋण [illegible] एक रजिस्टर समिति मे रहता हे। परन्तु इस विषय पर विचार करने [illegible] है कि समिति के सम्वन्ध मे प्रारभिक वैधानिक आवश्यकताओ

पर विचार किया जाय क्योकि इनका ज्ञान हर सहकारी विभाग के कर्मचारी तथा कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है।

पंजीकरण (Registration)—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि दस आदमी मिलकर सहकारी समिति की स्थापना कर लेते है। जब ऐसा निर्णय दस या इससे अधिक व्यक्ति कर लेते है, तो वह स्थानीय सहकारी विभाग के सब-इन्सपैक्टर से परामर्श प्राप्त करते है। फिर वह प्रार्थना पत्र के साथ उप-नियमो की प्रति लगाकर रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा अधिकृत अधिकारी के पास भेजते है। उक्त अधिकारी के विभाग मे प्रार्थना की पडताल की जाती है कि वह अधिनियम मे लिखित प्रतिबन्धो को पूरा करती है या नही, अर्थात् वह उनके अनुकूल हे या नही। उसमे कोई अनुचित बात तो नही, वह सह-कारिता के सिद्धान्तो की पूर्ति मे सहायक है या नही, वह सदस्यो के आर्थिक हित की भावनाओ से प्रेरित है या नही। अगर इन सब कसौटियो पर वह ठीक उतरती हे तो रजिस्ट्रार महोदय इसे रजिस्टर कर लेते है।

कार्य-क्षेत्र—समिति का कार्य-क्षेत्र कितना व्यापक हो, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर किसी माप-तोल से नही दिया जा सकता। इसके स्थूल सिद्धान्त तो यह हे कि कार्य-क्षेत्र न तो इतना बडा होना चाहिए कि सदस्यो को एक दूसरे से परिचिति ही न हो सके, और न इतना कम कि वित्तीय दृष्टिकोण से वह अनुपयुक्त हो। सदस्यो का एक दूसरे से परिचय रहना बहुत आवश्यक है। पुरानी विचारधारा यह थी कि समिति मे एक-सी आर्थिक समस्याओ वाले व्यक्ति शामिल होने चाहिए। इस प्रकार एक ग्राम के लिए एक सहकारी समिति की धारणा बनी और फिर आवश्यकताओ की कसौटी ने एक-एक ग्राम मे ब्राह्मणो, राजपूतो, हरिजनो तथा शिल्पियो आदि की विभिन्न समितियो को जन्म दिया। इस तरह दो-दो, चार-चार घरो वाले ग्रामो के लिए एक समिति बनी और एक-एक गाम मे पाच-छ समितियो का निर्माण होने लगा। यह छोटी समितिया पुष्ट न हो सकी और आर्थिक तौर पर असफल ही रही। प्रयोग कही सफल भी रहे। प्रारम्भ मे साधारणतया यह समितिया अच्छी चलती रही परन्तु समय के साथ-साथ चार-पाच वर्षो मे यह ढीली पडती जाती। इस समस्या पर गहन विचार करने पर विचारक इस निष्कर्ष पर पहुचे कि जिस प्रकार ग्रामीण साहूकार ग्रामीण जीवन की सब आवश्यकताओ का प्रबन्ध करके ही

सफल आर्थिक जीवन व्यतीत कर पाता है, इसी प्रकार सहकारिता मे भी इसी प्रकार की नीति का अवलम्बन करना पडेगा और इसी विचारधारा ने सगठित तथा एकीकृत सहकारी पद्धति को जन्म दिया। वस्तुत यह सगठित तथा एकीकृत सहकारी पद्धति अनेक उद्देश्य वाली सहकारी समिति का एक वैज्ञानिक ढग से विकसित तथा परिष्कृत रूप है। इस पर विशेष विचार इससे सबधित अध्याय मे होगा। परन्तु हमे प्रारम्भिक सहकारी समिति के क्षेत्र की धारणा अवश्य बदलनी होगी। अत प्रारभिक सहकारी समिति के कार्य-क्षेत्र की निर्भरता जन-सख्या तथा फैलाव पर होनी चाहिए। अत ५००० तक की जन-सख्या तथा ५ मील के व्यास से अधिक ऐसी समिति का कार्य-क्षेत्र नही होना चाहिए। इस तरह अधिक से अधिक १००० परिवार समिति मे शामिल होगे। वे एक दूसरे के आचार-व्यवहार तथा आवश्यकताओ से परिचित होगे। दरम्यानी दूरी भी इतनी रहेगी कि बैठक के लिए इकट्ठा होना कठिन नही होगा। जहा आबादी बिखरी हुई होगी वहा दूरी बढ जायगी और जहा आबादी घनी होगी वहा दूरी स्वयमेव कम हो जायगी।

सदस्यो की सख्या—सहकारी समिति प्रारभ करने के लिए शुरू मे अधिक सदस्य जरूरी नही। शुरू मे थोडे हो तो इसलिए ठीक रहता है कि उनमे सहकारिता के सिद्धान्तो को हृदयगम कराना सहज होता है। शनै-शनै सख्या बढाई जा सकती है, ताकि जो भी सदस्य बने उसकी सहकारिता मे अभिरुचि जागृत हो चुकी हो और वास्तविक कार्यकर्ता आगे आ सके। साधारणतया एक सहकारी समिति के १०० के लगभग सदस्य होने चाहिए।

सदस्यो की योग्यता—सदस्य वही लोग बनने चाहिए जिनका आचार-व्यवहार अच्छा हो अर्थात् सदाचारी हो। थोडी सख्या वाले ईमानदार, सदाचारी तथा विचारशील सदस्य हमेशा इन गुणो से विहीन अधिक सख्या वाले सदस्यो की अपेक्षा अधिक लाभप्रद होते है। अविश्वासी, सदाचार रहित व शरारती, चार या पाच सदस्य हो जाय तो समिति समाप्त हो जायगी वह कभी पनप नही सकती क्योकि सहकारिता तो सेवावृत्ति से ही पनपती है। अत सदस्यो के आचार का पहलू बडा ही आवश्यक है क्योकि सहकारिता का आधार-स्तभ तो आचा[illegible]था सेवावृत्ति है। और सभा का समूचा कार्य अधिकतर सेवा भाव से [illegible] 'वतय' की निस्वार्थ सेवा द्वारा ही चलता है।

समिति की साख कायम करने के लिए यह भी ग्रावश्यक होता है कि उसके कुछ सदस्य धनाढ्य भी हो। इनके सदस्य बनने मे दूसरा लाभ यह होता है कि धनिको का धन निर्धनो की स्वावलम्बन-परक सेवा मे इस्तेमाल होता है। परन्तु समिति की वास्तविक साख ग्रौर सदस्य की वास्तविक जमानत तो सदस्य का ग्राचार, नेकचलनी, प्रतिज्ञा-पालन, स्वावलम्बन की भावना ग्रादि ही है।

सफलता के लिए ग्रावश्यक बाते—सहकारी समिति की सफलता के लिए सर्वप्रथम ग्रावश्यकता होती है सहकारी भावनाग्रो को जागृत करने की। इसके बिना जो समिति बनती है उसकी नीव ही बालू पर रखी गई समझी जानी चाहिए। इसमे सन्देह नही कि ऐसी भावना जब ग्रन्दर से जागती है तभी वह दृढ होती है। परन्तु जब राजकीय नीति सहकारिता-परक हो ग्रौर एतदर्थ विशेष विभाग हो, तब उस विभाग के कर्मचारियो के लिए यह ग्रावश्यक हो जाता है कि वे जनता मे ऐसी भावनाए जागृत, सुदृढ तथा उन्हे विकसित करे। परन्तु यह शोक से लिखना पड रहा है कि भारत मे ग्रभी इस प्रकार के कर्मचारी वर्ग का ग्रभाव-सा ही है।

तो भी यह काम हमे सरकारी तथा जनता दोनो पक्षो की ग्रोर से करना होगा। कार्यकर्ता वर्ग को चाहिए कि सदस्यो को नीचे लिखी बाते ग्रच्छी तरह समझाकर उनके मानस-पटल पर ग्रकित कर दे

(१) मितव्ययी होना, दूसरो से सहानुभूति रखना तथा ग्रपने पावो पर खडे होना।
(२) जो सदस्य बने उनका एक-दूसरे से पूर्ण-परिचय की ग्रावश्यकता।
(३) सदाचार, पारस्परिक विश्वास तथा ईमानदारी की ग्रावश्यकता।
(४) ग्रसीमित उत्तरदायित्व वाली समिति मे सदस्य की ग्रपनी समस्त सम्पत्ति की सीमा तक तथा सीमित उत्तरदायित्व वाली समिति मे हिस्से के नामाकित मूल्य तक समिति के ऋण के लिए जिम्मेदारी।
(५) प्रबन्धक समिति के कर्तव्य तथा उनका उत्तरदायित्व।
(६) सदस्यो को ऋण केवल उपयुक्त ग्रावश्यकता ग्रथवा उत्पादक कार्यो के लिए ही देना।
(७) यह देखना कि ऋण का रुपया उसी कार्य पर लगाया गया है जिसके लिए वह ऋण प्राप्त किया गया था।

(८) जिस सस्था (केन्द्रीय बैंकादि) से रुपया आता हो उसके नियमो का सदस्यो को ज्ञान।

(९) ऋण की वापसी अपनी बचत से जमा करके देना, किसी से ऋण लेकर नही और प्रतिज्ञानुसार समय पर ऋण लेकर लौटाना।

यदि इन बातो पर सदस्य पूरा आचरण करे तो कोई भी समिति असफल नही हो सकती।

पजीकरण की पूर्वावश्यकताए—जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है सहकारी समिति का वास्तविक ध्येय यह है कि आपस मे मेल-जोल करके 'सबके बहुत भले' के सिद्धान्त को क्रियान्वित किया जाय। इस प्रकार यह आवश्यक हो जाता है कि सहकारी समिति के प्रमाणीकरण से पूर्व यह भली प्रकार देख लिया जाय कि

(१) सभा के हर सदस्य को सहकारिता के सिद्धान्तो से पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका है।

(२) सब सदस्य ईमानदार है।

(३) ऋण केवल सदस्यो को ही दिए जाने का प्रावधान है।

(४) ऋण केवल ऐसे कामो के लिए दिया जाने का प्रावधान है जिससे उत्पादन बढे और जीवन की आवश्यकताए पूरी हो।

(५) इस बात का प्रबन्ध है कि ऋण जिस मतलब के लिए लिया गया है उसी पर व्यय होगा, और यदि ऐसा न हो तो ऋण वापस ले लिया जायगा।

(६) ऋण का जामिन भी लिया जायगा।

(७) सेक्रेटरी को छोड समिति के अन्य पदाधिकारी नि शुल्क काम करेगे।

(८) प्रबन्धक-समिति से उपर सब अधिकार साधारण सभा को होने चाहिए ताकि सब सदस्य समिति के कार्य मे दिलचस्पी ले।

(९) समिति का सचालन लोकतत्री ढग पर हो और साधारणतया निर्णय निर्विरोध हो।

(१०) एक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार हो।

(११) समिति के सब कार्य खुले हो, छिपे रूप से न हो।

प्रबन्ध—समिति का प्रबन्ध तीन अगो पर निर्भर होता है, साधारण सभा,

प्रबन्धक समिति तथा कार्यकर्ता अथवा कर्मचारी वर्ग। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

साधारण सभा—जो व्यक्ति समिति के नियमानुसार एक या इससे अधिक भाग खरीदे और समिति उसे सदस्य श्रेणी में प्रविष्ट करने की स्वीकृति दे, तो वह सभा का सदस्य बन जाता है। इस तरह सब सदस्यों के समूह को साधारण सभा अथवा समिति कहते हैं। समिति के संबंध में सर्वोपरि अधिकार साधारण सभा को ही होते हैं और इस सभा में हिस्सों का विचार रक्खे बिना हर सदस्य का एक मत होता है। वैध बैठक के लिए आवश्यक होता है कि उपनियमों में लिखे अनुसार उतने सदस्य अवश्य उपस्थित हों तथा बैठक नियमानुसार बुलाई गई हो। परन्तु साधारण सभा बहुत बार नहीं हो सकती। अधिनियम के अधीन साधारण सभा की वर्ष में एक बार बैठक होनी आवश्यक है। इस बैठक में वर्ष के कार्य पर विचार तथा हिसाब-किताब का ब्योरा साधारण सभा लेती है और अगले वर्ष के लिए चुनाव करती है। यह अनिवार्य कार्य है। इसके अतिरिक्त सभा को उचित है कि वह गत वर्ष के कार्य की विवेचना करे और अगले वर्ष के लिए कार्य-क्रम निर्धारित करे। क्योंकि साधारण सभा दैनिक कार्यों के लिए इकट्ठी नहीं हो सकती, अतः दैनिक कार्य के लिए सभा की एक प्रबंधक समिति होती है।

प्रबंधक-समिति—प्रबंधक-समिति साधारण सभा द्वारा उपनियमों के अनुसार निर्वाचित होती है। प्रबंधक-समिति के सदस्यों की संख्या उपनियमों के अधीन निश्चित होती है। यह संख्या ५ से १२ तक यथावश्यकता हो सकती है। यह सब सदस्य साधारण सभा द्वारा चुने जाते हैं। यह यदि चुनाव बहुमत के स्थान पर सर्व सम्मति से हो तो अधिक सफल रहते हैं।

प्रबंधक-समिति में साधारणतया एक प्रधान, एक उपप्रधान, एक मंत्री तथा एक कोषाध्यक्ष होते हैं। साधारण तौर पर प्रबंधक-समिति सभा के समस्त संचालन के लिए साधारण सभा के निर्देश के अनुसार उत्तरदायी होती है और साधारणतया निम्न कार्य करती है—

(१) पूंजी संग्रह।

(२) ऋण का उपनियमानुसार आदान-प्रदान।

(३) हिसाब का ठीक तौर पर रखना।

(४) सभा के दैनिक कार्य की देखभाल ।
(५) साधारण सभा के निर्देशो का पालन तथा निश्चयो को कार्यान्वित करना ।

प्रबधक-समिति को नीचे लिखे कार्य नही देने चाहिए—

(१) प्रबधक-समिति का चुनाव ।
(२) रजिस्ट्रार को भेजने से पूर्व साधारण सभा द्वारा की गई जाच ।
(३) सदस्यो को पृथक् करना आदि ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रबधक-समिति मे कुछ पदाधिकारी होते है। उनके कार्यो का सक्षिप्त विवरण देना भी लाभप्रद होगा—

प्रधान व उपप्रधान—यह साधारण सभा द्वारा निर्वाचित होते है और उनके यह कार्य होते है—

प्रबधक-समिति तथा साधारण सभा की बैठको की अध्यक्षता करना तथा पदाधिकारियो के कामो पर निगरानी रखना । विशेष परिस्थितियो मे जब कोई विशेष अडचन हो तो प्रबन्धक-समिति प्रधान को विशेष अधिकार दे सकती है । उपप्रधान प्रधान की अनुपस्थिति मे प्रधान का तथा प्रधान की सहायता का काम करता है ।

मंत्री—समिति के कार्य सचालन के लिए एक मत्री की आवश्यकता होती है । यह आम तौर पर सभा का सदस्य होता है । यदि सदस्यो मे कोई उपयुक्त व्यक्ति न मिले तो बाहर से भी किसी उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है । परन्तु सदस्य मत्री सदा लाभप्रद होता है । नियमानुसार मत्री को वेतन सब समितिया देने की क्षमता नही रखती । अत मत्री को वर्ष के अत मे पुरस्कार अथवा भत्ता देना ठीक रहता है । स्थानीय व्यक्ति इस काम के लिए इसलिए अधिक अच्छा होता है कि उसे सब लोग जानते है और विश्वास भी अधिक होता है । वह भी सबको जानता है। स्थानीय स्कूल का अध्यापक इस काम के लिए अच्छा हो सकता है। परन्तु शीघ्र स्थानातरण इसमे बाधा डालता है । स्थानीय पचायत का सचिव अधिक उपयुक्त हो सकता है। मत्री को कभी प्रबधक-समिति के अधिकार नही देने चाहिए कि वह उसके निर्णयो तथा निर्देशो को चालू करे । क्योकि अधिक अधिकार प्राप्त करके मत्री समिति का

मालिक बनकर उनकी मालिकता को समाप्त कर देता है। मंत्री के आमतौर पर निम्न कार्य होते हैं—

(१) समिति की कार्यवाही को नियमपूर्वक लिखना।

(२) समिति के वास्ते पत्र-व्यवहार करना।

(३) समिति के सदस्यों से प्रवेश-शुल्क तथा खरीदे गए हिस्सों का रुपया प्राप्त करके जमा करना।

(४) प्रबन्धक-समिति के निश्चयों को क्रियान्वित करना।

(५) समिति के हित में दैनिक कार्य की देखरेख।

कोषाध्यक्ष—सभा की आय को सभालने का कार्यभार उठाने के लिए कोषाध्यक्ष की नियुक्ति होती है। सभा की जितनी आय हो चाहे वह हिस्सों की बिक्री द्वारा हो, या प्रवेश शुल्क द्वारा या अमानत द्वारा या ऋण द्वारा, यह सब आय कोषाध्यक्ष के पास जानी जरूरी है। कोषाध्यक्ष का कर्तव्य है कि वह समस्त आय प्राप्त करे और उसे रोकड़-बही में दर्ज करे और उसको प्रबन्धक-समिति के निर्णय के अनुसार निकाला करे। यह कोष समिति के हित में प्रयोग के लिए है। आजकल आमतौर पर कोषाध्यक्ष समिति का रुपया सहकारी बैंक में रखते हैं। इस जमा किये धन को बैंक से निकालने के लिए प्रबन्धक-समिति प्रस्ताव द्वारा एक या उससे अधिक सदस्यों को अधिकार प्रदान करती है। और वही सदस्य अपने हस्ताक्षरों द्वारा धन राशि निकलवा सकते हैं।

आवश्यक रजिस्टर—हर समिति के लिए अधिनियम, नियम तथा उपनियमों के अधीन कुछेक रजिस्टर रखने आवश्यक हैं। यदि यह रजिस्टर न रखे जाय तो सभा की तरफ से नियमों की अवहेलना समझी जाती है। यह रजिस्टर इस प्रकार हैं —

रोज धनावशेष निकालकर उसका मिलान करना पडता है।

खाता-वही—इसमे हर सदस्य के हिसाव का पृथक् खाता खोलना पडता है तथा समिति के विभिन्न हिसावो के भी खाते रखने पडते है। खाते के हर इन्दराज मे प्राप्तव्य का अथवा देय राशि तथा अवशेष निकालना पडता है। और रोकडवही के सब इन्दराज खातो मे वँटने जरूरी होते है।

रजिस्टर-किश्तवन्दी—इसमे दिये गए कर्जे की जितनी रकम जिस तारीख को देनी हो वह दर्ज रहनी चाहिए। इसमे यह भी स्पष्ट दर्ज रहना चाहिए कि कर्जे की किश्त मिली या नही।

रजिस्टर-अमानत—इस रजिस्टर मे वह सब धन-राशिया अमानतदार के नाम के साथ खातेवार दर्ज रहती है, जिन्होंने समिति के पास अमानत जमा कराई हो। इनके आदान-प्रदान का भी व्योरा दर्ज रहता है।

रजिस्टर-कार्यवाही—इस रजिस्टर मे प्रवन्धक व साधारण सभा की कार्य-वाही का व्योरा दर्ज रहता है। कार्यवाही रजिस्टर मे हर उपस्थित सदस्य के हस्ताक्षर होते है तथा हर विषय तथा वैठक मे हुए निश्चय दर्ज रहते है। यदि सभा वडी हो तो प्रवन्धक व साधारण सभा के कार्यवाही-रजिस्टर पृथक् रखे जाते है। समिति के निश्चयो का यह प्रामाणिक लेख सग्रह होता है और इसमे लिखे विषयो की प्रामाणिक प्रतिलिपि मत्री दे सकता है।

धन का उपयोग—हर समिति को आवश्यक है कि धन को साधारण व्यक्ति की-सी होश्यारी के अनुसार ठीक ढग से, मितव्ययता से तथा उपनियमो के अनुसार प्रयोग मे लाय। साथ ही इस वात का भी स्याल रखना चाहिए कि समिति की नीति का कही यह फल तो नही कि सदस्यो को आवश्यकता पूर्ति तथा आवश्यक ऋण प्राप्ति के लिए विवश होकर गाव के साहूकार अथवा दूकान-दार का आश्रय तो नही लेना पडता।

ऋण-प्रदान—यह समितिया धन का उपयोग ऋण के लेन-देन पर ही करती है। आमतौर पर यह देखा गया है कि ऐसीं समितियो मे ऋण दिया तो जाता है, परन्तु वसूली मे इतनी ढील रहती है कि धीरे-धीरे समिति की दशा पतली होती जाती है, और कइयो को तो शीघ्र ही परिसमापन की कार्यवाही का मुह देखना पडता है। आगे ऋण देने मे समिति को वडी सावधानी तथा सतर्कता से काम करना चाहिए ताकि समिति उत्तरोत्तर उन्नति करती जाय। इस काम

मे निम्न वातो का·ध्यान रखना लाभदायक होता है—

(१) हर सदस्य को यदि आवश्यकता पडने पर सभा से रुपया न मिले और उसे साहूकार का मुह देखना पडे तो उसे समिति के सदस्य होने का कोई लाभ नही होगा और इस तरह सदस्य समिति से विमुख होते जायगे। अत आवश्यकता पडने पर सदस्य को समिति से ऋण मिल जाना चाहिए।

(२) कई बार ऐसी आवश्यकताए आ पडती है जिनके लिए व्यक्ति प्रतीक्षा नही कर सकता यथा मृत्यु आदि। ऐसी परिस्थितियो पर प्रधान अथवा अन्य सदस्य को प्रबन्धक-समिति के प्रस्तावानुसार ऋण देने का इस प्रतिबन्ध सहित अधिकार रहना चाहिए कि वाद मे उसे प्रवन्धक-समिति द्वारा अनुमोदित करवा लिया जायगा।

(३) सभाको इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि कही प्रवन्धक समिति के सदस्य अपने मित्रो व सम्वन्धियो को या आपस मे ही तो ऋण नही वाट लेते। अत यह उपनियम चाहिए कि प्रबन्धक-समिति के सदस्य सभा के ऋणी न हो। और ऋण देने की अधिकतम सीमा नियत की जाय जिससे अधिक ऋण किसी को न दिया जा सके, ताकि न तो रुपया मित्रो आदि मे बाट सके और न ही किसी एक पर इतना ऋण का बोझ हो जाय कि वह आखिर दिवालिया होने पर विवश हो।

(४) इस बात के परीक्षण के लिए कि किसी सदस्य को उसकी हैसियत से अधिक ऋण न दिया जाय, क्योकि हैसियत से अधिक ऋण दिए जाने मे सदस्य कठिनाई मे पड जाता है, इस तरह हर सदस्य की भी अधिकतम ऋण-सीमा उसकी हैसियत के अनुसार निर्धारित कर देनी चाहिए।

अधिकतम ऋण-सीमा—ऋण-प्राप्ति के लिए अधिकतम ऋण-सीमा असीमित उत्तरदायित्व वाली सहकारी समितियो मे हैसियत के अनुसार ही होती है। अभी तक हैसियत उसकी भूमि तथा अन्य सम्पत्ति से आकी जाती थी, परन्तु ऐसी पद्धति मे काश्तकार घाटे मे ही रहता था। वह फसल उगाता परन्तु उसे फसल के वदले भी सहकारी समिति से ऋण न मिल सकता था परन्तु साहूकार दे देता था। अव ग्रामीण साख-सर्वेक्षण रिपोर्ट के प्रस्तावानुसार एक ओर तो अधिनियम के अधीन फसल पर सहकारी ऋण का सभार किया गया है और सदस्य की अधिकतम ऋण-सीमा के निर्धारण मे काश्तकार की

फसल का भी विचार रखा जाता है।

सीमित उत्तरदायित्व वाली सहकारी समितियो मे हैसियत के अनुसार ऋण-सीमा की अधिकतम मात्रा आककर फिर उसे हिस्से के धन पर अवलम्बित उत्तरदायित्व की मात्रा तक अर्थात् हिस्सो मे धन के निर्धारित खण्ड तक फिर सीमित कर दिया जाता है। इस तरह ऋण की महत्तम सीमा निर्धारित कर दी जाती है।

ऋण की अवधि—सहकारी प्रणाली मे ऋणो को तीन भागो मे विभक्त किया जाता है अर्थात् (१) अल्पकालिक, (२) मध्यकालिक और (३) दीर्घ कालिक।

(१) अल्पकालिक ऋणो की अवधि १५ मास तक होती है। यह ऋण साधारणतया फसलो के उत्पादन मे सहायता के लिए दिये जाते हे। प्रबन्धक समिति को ऐसे कार्यों का व्योरा निश्चित कर लेना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसी आवश्यकता इस प्रकार होती है—

(१) बीज खरीदना, (२) छोटे-छोटे उपकरण (औजार) खरीदना, (३) खाद और चारा-घास आदि का क्रय, (४) कृषि के लिए मजदूर लगाना व बैल आदि का किराये पर उपयोग, (५) उत्पादन को मण्डी तक ले जाने के लिए प्रबन्ध, (६) लगान का देना, (७) सिचाई-कर का देना, (८) उपज को उपयुक्त समय पर विक्रय के लिए रोकने के आतरिक काल मे आवश्यकताओ की पूर्ति आदि-आदि।

इस ऋण की अदायगी दो या एक किस्त मे ही सदस्य को करनी पडती है।

(२) मध्यकालिक ऋणो की अवधि ३ वर्ष तक होती है और इनकी वापसी के लिए छमाही किस्ते की जाती है। यह ऋण उन आवश्यकताओ पर दिए जाते है जिनकी आवश्यकता उत्पादक कार्यो मे सहायक होती है, और जिनकी वापसी कृषक अपनी आय के साधनो से शीघ्र चुकाने की क्षमता नही रखता—

(१) कृषि उपकरणो का क्रय, (२) बैलो का क्रय, (३) भूमि का सुधार, (४) और स्रोतो से प्राप्त ऋण की अदायगी, (५) शिक्षा, (६) आवश्यक मुकदमाबाजी, (७) आवश्यक सस्कार, (८) ग्रामोद्योगो आदि के लिए।

(३) इससे अधिक अवधि मे लौटाए जाने वाले ऋण दीर्घकालिक ऋण कहलाते

है। ऐसे ऋण साधारणतया छोटी प्रारभिक समितिया नही देती। यह ऋण—(१) मकान बनाने, (२) भूमि खरीदने, (३) बगीचा लगाने, (४) मशीनरी आदि लगाने, सिचाई का प्रबन्ध करने आदि के लिए दिए जाते है। इनके लिए भूमि-बन्धक-अधिकोष प्रबन्ध करते है। परन्तु जहा ऐसे बैंक नही होते वहा यह ऋण सहकारी बैंक से रुपया प्राप्त करके समितिया भी दे सकती है। इन ऋणो के देने मे कई बार अधिकतम ऋण सीमा का उल्लघन करना पडता है और ऐसी दशा मे इस ऋण से खरीदी जाने वाली सम्पत्ति को सभा बन्धक रूप मे रखती है।

सदस्यो मे नियत समय पर ऋण लौटाने का स्वभाव डालना इस पद्धति की सफलता के लिए बडा आवश्यक है।

ऋण-पत्र (प्रोनोट)—ऋण को सुरक्षित रखने तथा उसके लौटाने के प्रतिबन्धो को निश्चित करने व दर ब्याज आदि को लिखितस्वरूप देने के लिए हर ऋण का एक ऋण-पत्र लिखा जाता है। यह ऋण-पत्र दो प्रकार के होते है—तमस्सुक तथा प्रोनोट। प्रोनोट शैली को अधिक लाभदायक समझा जाता है, क्योकि उसमे शर्त नही होती, यह दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित किया जा सकता है अथवा किसीके नाम बदला जा सकता है। इसमे कर्जे की माग पर उसके लौटाये जाने की प्रतिज्ञा होती है। जबानी शहादत की आवश्यकता नही रहती। परन्तु इस प्रकार के ऋण-पत्र अल्पकालिक ऋणो मे ही प्रयुक्त हो सकते है क्योकि जहा किस्तो की शर्त हो वहा प्रोनोट की शैली प्रयुक्त नही हो सकती। क्योकि प्रारभिक समितियो मे कानून जानने वाले कम होते है, अत यह आवश्यक है कि प्रोनोट और तमस्सुक आदि सहकारी विभाग की सलाह से छपवा लिए जाय।

जामिन—ऋण देते समय सदस्य से जामिन अथवा उसकी जमानत देने वाला भी लेना चाहिए या नही ? वस्तुत समिति का सदस्य अपना जामिन स्वय होता है। सहकारी पद्धति मे असली जमानत तो सदस्य की विश्वासपात्रता तथा उसका सदाचार होती है। फिर समिति को ऋण की वापसी की इतनी चिन्ता नही होती जितनी कि सदस्यो की आर्थिक दशा को बचत आदि का स्वभाव पैदा करके सुधारने की होती है। जहा साधारण लेनदेन मे जामिन इसलिए लिया जाता है कि ऋण की वापसी सुरक्षित रहे, वहा सहकारी समिति ऋण की वापसी

सुरक्षित करने के साथ-साथ इसलिए भी जामिन लेती है कि ऋण उसी काम मे प्रयोग लाया जाय जिसके लिए वह लिया गया है और ऋण लेने वाला सदस्य बचत आदि द्वारा रुपया बचाकर लौटाने का प्रयत्न करे। क्योकि ऋणी के ऋण न लौटाने पर वह रुपया जामिन से वसूल किया जा सकता है, इसलिए जामिन ऋण के प्रयोग तथा बचत के स्वभाव को अपनाने आदि के क्रम पर अधिक ध्यान रखेगा। इस ध्येय के समक्ष जामिन लिया जाना उपयुक्त ही होता है।

ब्याज—प्रवन्धक-समिति को चाहिए कि ब्याजो की दर नियत रक्खे। यह दर सबके लिए समान होनी चाहिए। इसमे इन बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) दर बाजारी दर से कम हो।
(२) दर इतनी कम भी न हो कि सभा अपने लिए कुछ भी न बचा सके।
(३) दर-ब्याज बैंक से समिति जिस दर पर ऋण प्राप्त करती है उससे कुछ अधिक होनी चाहिए। साधारणतया १% से २% बढोतरी होनी चाहिए।
(४) ब्याजदर इतनी अधिक नही होनी चाहिए कि सदस्य समिति को छोडकर अन्य स्थान से ऋण प्राप्त करने का यत्न करे, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कही साहूकारी-वृत्ति रखने वाले समिति के सदस्य समिति से कम दरो पर ऋण लेकर गरीब कृषको को अधिक दरो पर तो ऋण नही देते।

ऋण की समय पर वापसी—सहकारी समिति का वस्तुत प्रथम कर्तव्य यह है कि सदस्यो मे सदाचार भावना को पुष्ट करे। बचत सिखाये तथा समय पर ऋण लौटाने का उनमे स्वभाव डाले। ऋण की समय पर वापसी सभा के अपने प्रगतिशील जीवन के लिए परमावश्यक है। क्योकि रुपया समय पर वापस न आय तो रुपया फसा रह जाता है और समिति के पास शेष सदस्यो की आवश्यकता-पूर्ति के लिए कुछ रह नही जाता। इतना ही नही सहकारी बैंक का कारोबार भी इस अवहेलना से ठप्प हो सकता है। इसलिए ऋण के इस पक्ष की ओर प्रबन्धक-समिति का विशेष ध्यान रहना चाहिए अन्यथा समिति निर्बल होकर समाप्त हो जायगी। यदि ऋण लेने वाला समय पर ऋण वापस न करे तो उसके लिए ब्याज-दर अधिक हो जाने का डर रहना चाहिए ताकि

समय पर ऋण की वापसी के स्वभाव को प्रोत्साहन मिले। ऐसी ढील करने वाले ऋणी तथा जामिन को पुन ऋण मिलने मे रुकावट रहनी चाहिए। इससे समय पर ऋण-वापसी के स्वभाव को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु यह बहुत आवश्यक है कि समिति की प्रबन्धक-समिति इस कार्य मे बहुत सतर्क रहे।

सहकारी विभाग—विभाग के जिम्मे भी कुछ ऐसे काम है जिन्हे यदि तत्परता से न किया जाय जो सहकारी समितियो का काम शिथिल पड जाता है। उनकी ओर भी सक्षिप्त सकेत किया जाना अनुपयुक्त नही होगा। सहकारी विभाग के जिम्मे अधिनियमाधीन दो ही कार्य है—उनका पजीकरण तथा हिसाब की जाच-पडताल परन्तु सरकार द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त तथा राज्य की नीति को क्रियान्वित करने वाला यह आन्दोलन सहकारी विभाग पर आवश्यकता से अधिक आश्रित रहता है। परन्तु यहा पर तो इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि सहकारी विभाग का उपनिरीक्षक तो समितियो के सगठन करने का, और यह ध्यान रखने का उत्तरदायी होता है कि वह ठीक से चल रही है। इसका कर्तव्य होता है कि हर समिति मे वह एक महीने मे एक बार जाय। उसके बाद निरीक्षक की श्रेणी आती है। यह समिति के कार्य को देखकर उसकी भूले सुधारने तथा मत्रणा देने के लिए होता है। हर समिति का वर्ष मे एक बार निरीक्षण करना आवश्यक है। तृतीय श्रेणी लेखा परीक्षको की होती है। इनका कर्तव्य है कि वर्ष मे कम से कम एक बार हर सभा समिति के हिसाब की जाच-पडताल करे। हर समिति को चाहिए कि सहकारी विभाग के इन कर्मचारियो से पूरी-पूरी सहायता प्राप्त करे। इनके सहयोग तथा सहायता से कार्य की सफलता की सभावनाए बढ सकती है। और सहकारी विभाग के कर्मचारियो को भी चाहिए कि उनकी वृत्ति ऐसी हो कि वे इस लोकतन्त्री आन्दोलन को बढावा दे और वैसी ही अभिरुचि रखे।

निर्णायक या सालिस— जब कोई सदस्य ऋण न लौटाए अथवा कोई अन्य विवाद समिति मे हो तो ऋण की वसूली के लिए समिति को कचहरी मे नही जाना पडता। वरन वह अपना मामला असिस्टेंट रजिस्ट्रार के सामने रख कर उसके निर्णय के लिए एक मध्यस्थ (सालिस) नियुक्त करवा लिया जाता है। सहकारी अधिनियम के अधीन इसे निर्णय देने के पूर्ण अधिकार होते है। और इसका निर्णय न्यायालय से मान्य होकर उसकी डिगरी तक हो सकती है।

समिति के प्रवन्धक को आवश्यक अवसरो पर इम अधिकार का प्रयोग कर लेना चाहिए।

समिति की असफलता के कारण—यदि सहकारी सगठन की प्रवन्धक समिति के सदस्य स्वार्थी या लापरवाह हो तो वे अपनी आय का ही ध्यान रखेंगे, सभा के कार्य की ओर ध्यान नही देगे। इसका फल यह होगा कि समिति के सदस्यो को ऋण मिलने मे असुविधा होगी, वह निष्पक्ष रूप से नही वाटा जायगा। वापसी के लिए प्रयत्न नही होगा। इम प्रकार समिति का कार्य शिथिल होता जायगा, इसकी असफलता के प्रधान कारण इस प्रकार होते है—

(१) देख-रेख की कमी,
(२) बिना सोचे-समझे ऋण देना,
(३) ऋणी लोगो का प्रवन्धक समिति के सदस्यो की आज्ञा न मानना,
(४) समय पर ऋण न लौटाया जाना,
(५) सदस्यो को ऋण देने मे पक्षपात,
(६) समिति के कार्यकर्ताओ की बेइमानी और अयोग्यता,
(७) सदाचारहीन अनुचित व्यक्तियो का सदस्य होना,
(८) समिति के क्षेत्र का बहुत कम या बहुत अधिक विस्तृत होना,
(९) सदस्यो द्वारा अपने पुराने ऋणो को छिपाकर रखना,
(१०) सभा के उपनियमो मे भूले और उनकी अवहेलना,
(११) समिति मे आन्तरिक वैमनस्य,
(१२) रुपया या सदस्यो की न्यूनता,
(१३) एक सदस्य का समिति पर छा जाना,
(१४) सदस्यो का समिति के कार्य मे रुचि न लेना,
(१५) सहकारी विभाग के कर्मचारियो तथा समिति के सदस्यो मे विरोध।

अत सबसे आवश्यक बात है रजिस्ट्रार तथा उसके अधीन कर्मचारी समिति की निगरानी रखे और यह देखभाल रचनात्मक तथा शिक्षात्मक होनी आवश्यक है। सहकारी विभाग के कर्मचारी कई बार ध्वसात्मक प्रवृत्तियो को अपना कर केवल यही ढूढते है कि किस प्रकार प्रबन्धक-समिति के किसी सदस्य ` किसी छोटी भूल के लिए फौजदारी मुकदमो मे फसाया जा सकता है। स्ट्रार को चाहिए कि विभाग के कर्मचारियो की ऐसी वृत्तियो को रोकता

रहे और निगरानी द्वारा सभा के प्रगतिशील जीवन को सुरक्षित करे। कई बार उपनियमो को ठीक करने अथवा प्रवन्धक समिति मे थोडा हेर-फेर करने से समिति की दशा सुधर जाती है। रजिस्ट्रार को परिस्थितियो के अनुसार प्रवन्धक-समिति को स्थगित अथवा बरखास्त करने के भी अधिकार होते है। समिति की दशा बहुत ही खराब हो तो उसको समाप्त कर देना ही एकमात्र इलाज रह जाता है। साधारण सभा को चाहिए कि प्रबन्धक समिति चुनते समय विशेष ध्यान रखे कि निस्वार्थ तथा रचनात्मक वृत्ति वाले सदस्य प्रवन्धक-समिति मे रहे अन्यथा समिति का सचालन सुचारु रूप मे नही हो सकेगा। परन्तु सब वातो के साथ-साथ कर्मचारियो तथा समिति के सदस्यो का निरन्तर प्रशिक्षण बहुत आवश्यक होता है। इसके विना ऊपर लिखी कमजोरिया या वुराइया दूर नही होगी।

समिति का लाभ—जब समिति सफल होती है तो कुदरती तौर पर उसे लाभ होता है। परन्तु यह पहले लिखा जा चुका है कि सहकारी समिति लाभ कमाने का नही वरन् मानव-सेवा का उपकरण है। इतना होने पर भी यह एक व्यवसायिक सगठन है। अत कुछ लाभ के विना इसका निरन्तर चलते रहना सम्भव नही। अत. समिति को जो लाभ होता है उसके वितरण मे वडी सूझ-बूझ से काम लेना पडता है ताकि यह सस्था भी दूसरी कम्पनियो जैसी न हो जाय। अत यह कानून है कि—

(१) कोई सहकारी समिति खरीदे गये हिस्से के धन पर १०% से अधिक सदस्यो को लाभ वितरण न करेगी।

(२) २५% अनिवार्य तौर पर सुरक्षित कोष मे जमा होगा।

कहना न होगा कि सुरक्षित कोष एक वडा ही उपयोगी कोष है और यदि यह नियमपूर्वक पुष्ट होता जाय तो कुछ वर्षो के पश्चात् समिति के पास अपना इतना धन हो जाता है कि उसे अन्य कही से धन प्राप्त करने की आवश्यकता नही रहती। इसके अतिरिक्त सभा—

दान-कोष, पारस्परिक सहायता-कोष, अप्राप्तव्य ऋण-पूर्ति कोष, घाटा-कोप, भवन-कोष आदि मे लाभ को जमा करती रहती है।

सभा का मौलिक आधार—आमतौर पर देखा गया है कि हर समिति की कोई न कोई ऐसी सम्पत्ति होनी चाहिए जिससे समिति को कुछ आय भी हो,

और उसका कृषिपरक गुण बना रहे तथा वह दृढ बनी रहे। श्री लोबो प्रभु ने इस पक्ष पर बहुत जोर दिया है।

नगरो मे समिति का अपना मकान इस प्रकार की सम्पत्ति सुझाई गई है। परन्तु हर समिति का भवन के साथ यदि एक स्वावलम्बी कृषि-क्षेत्र हो, जहा समिति की प्रबन्धक-समिति के सदस्य ग्रामीण प्रथानुसार कार्य करके समिति के लिए उत्पादन करे तो समिति का जीवन सुरक्षित हो जाता है। उसकी आयु बढ जाती है तथा रचनात्मक पद्धति के परिचालन मे पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है।

हम ऊपर देख चुके है कि किसी भी प्रकार की सहकारी समिति हो उसकी सफलता के लिए कुछेक बाते जरूरी है। पर सबसे जरूरी समिति का एक ऐसा केन्द्रीय तथा मौलिक आधार होना चाहिए जो कि उसका साधारण खर्च निकाले, उसे स्थिर जीवन प्रदान करे, उसके प्रति जनता की दिलचस्पी पैदा करे तथा जिस प्रकार की भी समिति हो उसके कार्य मे सहायक हो।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व यह लिखना आवश्यक है कि आम-तौर पर हर सहकारी समिति का ढाचा प्रारम्भिक स्तर पर इसी प्रकार का होता है, परन्तु अन्य प्रकार की सहकारी समितिया सीमित उत्तरदायित्व वाली होती है। ऋण का अग हर समिति मे किसी न किसी ढग मे होता ही है। अंत ऊपर बताई गई बातो की ओर हर समिति को ध्यान रखना चाहिए ताकि उसकी असमय मृत्यु न हो।

: ३ :

सहकारिता और ऋण

अतीत मे ज्यो-ज्यो व्यक्तियो के सामाजिक जीवन का प्रारभ हुआ और पारस्परिक सम्पर्क बढा, तो व्यक्तिगत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वस्तुओ आदान-प्रदान होने लगा। अभी मुद्रा अर्थात् सिक्के का जन्म नही हुआ था एक वस्तु दूसरी वस्तु के बदले ली जाती थी। मुद्रा का विकास पहले पशु,

फिर अनाज तदनन्तर सिक्के के रूप मे हुआ। इस आदान-प्रदान मे कई बार ऐसी परिस्थितिया भी पैदा हो जाती थी जहा लेने वाला बदले मे उसी समय कुछ नही दे सकता था, अत ली हुई वस्तु के बदले कोई दूसरी चीज देने मे उसे कुछ समय की आवश्यकता होती थी। इस तरह ली हुई वस्तु अथवा मुद्रा ऋण पर ली गई समझी जाने लगी। और कुछ काल तक प्रतीक्षा के लिए जो कुछ अधिक दिया जाता था उसी को ब्याज कहा जाने लगा।

यो तो ऋण की आवश्यकता सभी प्रकार के व्यक्तियो को पडती है, परन्तु किसान को इसकी जरूरत अधिक रहती है क्योकि उसकी उपज प्राय वर्षा पर निर्भर होती है और फिर उपज एक अवधि के बाद प्राप्त होती है। अत इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऋण देने का भी एक व्यवसाय बन गया। चूकि ऋण लेने वाला विवशता की हालत मे होता है, अत ऋण देने वाले ने शनै-शनै अपने लाभ के लिए उसपर कडी शर्ते लादनी शुरू कर दी। शाईलॉक की कथा से हम सब परिचित है, जबकि मानव जीवन से धन का मूल्य अधिक आका जाने लगा था। इस स्वार्थ पूर्ण नीति को रोकने के लिए नियम बने। भारत मे ऐसा कानून प्रसिद्ध था कि जहा ब्याज द्वारा मूल धन दो गुणा से नही बढ सकता था। अवधि सम्बन्धी कोई कानून नही होता था जिस के कारण ऋण-पत्रादि नये नही करने पडते थे, और इस नवीनीकरण द्वारा ब्याज बढने की सभावना से भी बचत हो जाती थी।

यह सर्व विदित बात है कि भारत मे इस प्रकार ऋण देने वाले लोग इतने विश्वस्त होते थे कि लोग उनसे एकान्त मे ऋण लेते और वापस करते थे। केवल उनकी बही पर हिसाब हुआ करता था और ऋणपत्रादि नही लिखे जाते थे। शनै-शनै इस ईमानदारी तथा विश्वास मे कमी आई और ऋणपत्र अथवा हिसाब लिखने के बाद अन्त मे ऋण लेने वाला कलम को छू लेता। फिर निशानी डालने लगा, उसके बाद हस्ताक्षर अथवा अगूठा लगाने की बारी आई। आखिर मे हम ऐसी दशा मे पहुच गए जहा साक्षी डालने पडने और कई और बाते करनी पडती। उधर सरकार का कानून आया जिसमे हर तीसरे वर्ष ऋण-पत्र नया होने पर ब्याज मूल मे मिल जाता और उसपर भी ब्याज लगना प्रारंभ हो जाता। यह एक अद्भुत बात है कि ज्यो-ज्यो हम कानून पास करते है ईमानदारी, विश्वास तथा ईश्वर का डर कम होने लगता है। यह सब हुआ और ऋण-दाता ने शोषण

तथा स्वार्थपरायणता मे पड कर निर्धन, अनपढ तथा भोले-भाले किसान तथा ऋण लेने वाले अन्य लोगो को नृशसता से लूटना शुरू किया। इससे अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक निर्धन हो गया। यह हालत विश्व के हर भाग मे हुई। समाज को इससे बचाने के लिए कई आन्दोलन चले, कई कानून बने और कई विचार पद्धतिया विकसित हुई। इसमे सन्देह नही कि अभी तक हम किसी भी उपाय द्वारा अपने ध्येय को प्राप्त करने मे सफल नही हो सके। इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक सफल तथा अधिक आशा प्रदान करने का गौरव आज की सहकारिता को प्राप्त है।

किसान ही हमारे समाज की रीढ है। इसी किसान द्वारा अधिक उत्पादन से ही समाज सुखी होता है। अत किसान की उत्पादन क्षमता बढाने के लिए जरूरी है कि वह स्वस्थ और सुखी हो। परन्तु हम कुछ ऐसे समाज का निर्माण कर चुके है जहा—

धरती का जो सोना चीरे, आखिर मु ह की खाय।
जर की खातिर खून बहाए, लेकिन खाक न पाय।
सब की झोली भरने वाला, और दामन फैलाय,
हरे भरे खेतो का आका, और फाको मर जाय।

किसान को बीज के लिए, उत्पादन बेचने के लिए, कपडा तथा अन्य आवश्यकता की वस्तुए खरीदने के लिए, विवाह तथा मरण सम्बन्धी खर्चे के लिए, बैल लेने के लिए समाज के किसी और अग का मुह देखना पडता। उसे ऋण मिलता परन्तु ऋण उसका सहायक न होकर शोषक तथा ध्वसक बन जाता। और किसान के सामने विवशता, निर्धनता, बीमारी, अकाल, निरक्षरता आदि का समुद्र ही डुबकिया खा-खाकर मरने के लिए रह जाता। इसी समस्या पर अधिक व्यावहारिकता तथा ब्योरेवार विचार करने के लिए देश की स्वतत्रता के बाद कृषि-वित्तीय उप समिति १९४५, तथा सहकारी योजना समिति १९४६ तथा ग्राम्य वित्तानुसन्धान समिति १९४९ बनी और उन्होने अपनी रिपोर्ट दी। फरवरी १९५१ रिज़र्व बैक ने भारत के सहकारी कार्यकर्त्ताओ, रजिस्ट्रारो ग्रामीण ऋण अधीक्षण समिति तथा अर्थ शास्त्रियो का सम्मेलन बुलाया, जिस मैं इन सब रिपोर्टो तथा सहकारिता के भविष्य पर विचार किया गया। इस सम्मेलन ने कई सिफारिशे की, परन्तु इन सब मे महत्वपूर्ण सिफारिश दीर्घ-

कालीन कार्यक्रम के लिए थी। सम्मेलन ने कहा कि वस्तु स्थिति के सम्बन्ध मे आकडो के अभाव के कारण ऋण सम्बन्धी नीति का ठीक तौर पर निर्धारण कठिन है अत रिजर्व बैंक ग्राम्य-ऋण समस्या का सर्वेक्षण करे।

विचार यह था कि इस अध्ययन मे ग्राम्य-ऋण सम्बन्धी समस्त वर्तमान समस्याओ को ध्यान मे रखा जाय और ऐसी सामग्री उपलब्ध हो जिससे ऋण सम्बन्धी नीति का निर्धारण वास्तविक परिस्थितियो पर अवलम्बित हो।

रिजर्व बैंक की केन्द्रीय परिषद् ने सुझाव स्वीकार करके एक कमेटी नियुक्त की और उसके कार्यक्रम को काफी उदार तथा सरल रखा कि—

(१) कमेटी सर्वेक्षण की योजना बनाकर कार्य का पर्यवेक्षण करती रहेगी,

(२) उसके फलो से निष्कर्ष निकालेगी तथा अपने सुझाव देगी। इस सांकेतिक कार्यक्रम का विश्लेषण रिजर्व बैंक के गवर्नर ने सरकार को लिखे गए अपने पत्र मे किया है, जिसमे कहा गया था—

"इस प्रकार वह समस्याए, जिनसे कमेटी सम्बन्धित है तथा वह सामग्री जिसके आधार पर उनकी पूर्ति की जा सकेगी, केवल आकडो से सम्बन्धित ही नही है वरन् वह आर्थिक तथा प्रशासनिक भी है। ··और यह रिजर्व बैंक ने ससद् की मागो (जिनमे रिजर्व बैंक द्वारा इन समस्याओ के सम्बन्ध मे अधिक रचनात्मक नीति का अवलम्बन वाछित था) के उत्तर मे, ग्राम्य-ऋण समस्या की नीति तथा कार्यक्रम मे नूतनीकरण से उत्पन्न हुई है। इसलिए रिजर्व बैंक द्वारा जो कार्यक्रम बनाया गया है वह त्रिविध है। प्रथम, वह पग जो लम्बे काल के प्रोग्राम तथा सगठन की प्रतीक्षा किए बिना उठाए जा सकते है, द्वितीय वह जिनके लिए लम्बे काल के कार्यक्रम की प्रतीक्षा की आवश्यकता तो नही परन्तु जिनकी निर्भरता सगठन-सम्बन्धी विकास तथा सुधार पर अवलम्बित हे, जैसे उच्चस्तरीय बैंक का सगठन, जहा वह नही है। कुछेक राज्यो मे प्रारम्भिक तथा माध्यमिक ऋण-सगठन का पुष्टिकरण तथा सहकारी विभाग तथा सहकारी सस्थाओ के कर्मचारियो का प्रशिक्षण। तृतीय प्रश्न है ग्राम्य-ऋण के सम्बन्ध मे दीर्घकालीन नीति। इसका सीधा सम्बन्ध उपरिलिखित दो पगो से है। निर्देशन समिति का काम केवल इतना ही है कि ऐसी सामग्री का सग्रह करे जिससे भविष्य के लिए नीति निर्धारण सुगम हो। मैंने एक छोटी-सी कमेटी का निर्माण

विचार मे रखा है, ताकि प्रशासनिक तथा विशेषज्ञो द्वारा मार्गदर्शन सुलभ हो। यह भी प्रावधान रखा है कि रिजर्व बैंक के तन्त्र, उसके अनुसन्धान-विभाग तथा स्थायी मत्रणा समिति से सम्बन्ध स्थापित रहे जिसमे कि निर्देशन समिति के सदस्य भी शामिल है। तदनुसार कमेटी के उद्देश्य पर्याप्त मात्रा मे उदार रखे गए है जैसा कि था भी जरूरी, और इसे केवल आकडे सम्बन्धी अनुसन्धान का साधन नही रखा गया।"

इस कमेटी ने एक प्रश्नावली तैयार की जिसके उत्तर प्राप्त हुए तथा देश के विभिन्न प्रतिनिधि क्षेत्रो मे विशेष अनुसन्धान किया गया। इसके लिए देश को निम्न १३ क्षेत्रो मे विभक्त किया गया—

सं०	नाम	क्षेत्र
१	असम-बगाल	त्रिपुरा, असम तथा साथ के ज़िले, बगाल के—लखीमपुर, कचार, त्रिपुरा तथा जलपाइगुडी।
२	बिहार-बगाल	बिहार तथा साथ के बगाल तथा दक्षिणी उत्तर-प्रदेश के जिले—माल्दा, बर्दवान, मिदनापुर, भागलपुर, मुघेर, हजारी बाग, पालामऊ तथा मिर्जापुर।
३	पूर्वी उत्तर-प्रदेश	पूर्वी उत्तर-प्रदेश के ज़िले—बलिया, देवरिया, जौनपुर, सुलतानपुर तथा सीतापुर।
४	पश्चिमी उत्तर-प्रदेश	पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के जिले—कानपुर, हमीरपुर, शाहजहापुर, आगरा, अलीगढ, नैनीताल तथा मेरठ।
५	पजाब—पेप्सू	पजाब, पेप्सू, हिमाचल प्रदेश—सिरमौर, होश्यारपुर, जालंधर, हिसार, भटिण्डा तथा महेन्द्रगढ।
६	राजस्थान	राजस्थान—चूरू, बाडमेर, सिरोही, जयपुर, सवाई माधोपुर तथा चित्तौड-गढ।

७. मध्य भारत	मध्यभारत, विंध्यप्रदेश तथा उत्तरी मध्य प्रदेश के जिले—झाबुआ, शिवपुरी, शाजापुर, भेलसा, रायसेन, सतना, रीवा तथा सागर।
८. उडीसा व पूर्वी मध्य-प्रदेश	उडीसा तथा पूर्वी व दक्षिणी मध्यप्रदेश के जिले—साभलपुर, पुरी, कारापट, विलासपुर, द्रुग तथा चान्दा।
९. पश्चिमी कपास क्षेत्र	मध्यप्रदेश के कपास पैदा करने वाले जिले—बम्बई, हैदराबाद तथा सौराष्ट्र। नागपुर, अकोला, सौराष्ट्र, अहमदाबाद, भडोच, पश्चिमी-खानदेश तथा परभनी।
१०. उत्तरी-दक्खन	बम्बई के दक्षिणी ज़िले, हैदराबाद, मद्रास, पूना, कोल्हापुर, बीजापुर, उस्मानाबाद, महबूब नगर तथा कुरनूल।
११. दक्षिणी-दक्खन	मैसूर तथा मद्रास के साथ के ज़िले—हसन, बगलौर, कोयम्बटूर तथा कोडापा।
१२. पूर्वी-तटवर्ती क्षेत्र	पूर्वी-तटवर्ती जिले, मद्रास व हैदराबाद के जिले, निज़ामाबाद, पश्चिमी गोदावरी, चिंगलपट तथा रामनाथपुरम्।
१३. पश्चिमी-तटवर्ती क्षेत्र	त्रावणकोर-कोचीन तथा पश्चिमी-तटवर्ती मद्रास व बम्बई के जिले। रत्नागिरि, मालाबार तथा क्विलौन।

उपरिलिखित तालिका मे उन ज़िलो के नाम भी दिये गए है जहा सर्वेक्षण किया गया।

वस्तुत भारत मे होने वाली यह अपने किस्म की पहली जाच-पडताल थी। पडताल द्वारा जो सामग्री प्राप्त हुई उससे कमेटी ने अपनी रिपोर्ट तैयार की। इसमे सन्देह नही कि मैकलेगन कमेटी की रिपोर्ट के बाद यही एक ऐसी रिपोर्ट

है जिसने भारतीय सहकारी क्षेत्र मे वहुत ही महत्व प्राप्त किया, और सन् १९४५ की सहकारी योजना समिति की रिपोर्ट से भी वाजी ले गई। यह भारत मे पहला ही अवसर था जवकि ग्राम्य-ऋण की समस्या पर या उससे सम्वन्धित सव पहलुओ को सामने रखकर विचार किया गया। विचार एकागी न था इसीलिए इसके प्रस्तावो की उपयोगिता भी वढ गई। यह रिपोर्ट दिसम्वर १९५४ मे प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट का सक्षिप्त विवरण दिए विना भारतीय ऋण समस्या तथा सहकारिता के विचार को परिपूर्णता प्राप्त होना कठिन है। सारी रिपोर्ट तीन भागो मे विभक्त हे। पहले भाग मे सार है, दूसरे मे रिपोर्ट और तीसरे मे सामग्री। रिपोर्ट मे सामाजिक, आर्थिक तथा ग्राम्य पृष्ठ-भूमि का वडी सहृदयता से अध्ययन किया गया है और अपने सुझाव रखे हे। इन सव वातो का हवाला देना तो इस पुस्तक मे कठिन है परन्तु अधिकृत सार का सक्षेप इस प्रकार है।

'क' भाग मे क्रम सख्या ३ तक तो कमेटी वनने आदि का विवरण है। अत भाग 'ख' से ही इस सक्षेप का प्रारभ किया गया है—

ख—पृष्ठभूमि, उद्देश्य तथा आवश्यकताए

(४) भारत की ३६ करोड की जनसख्या मे से ३० करोड ग्रामो मे रहते है, और ७० प्रतिशत का व्यवसाय कृषि या उस पर आधारित व्यवसाय है। ग्रामीण जनता का ८०% तो कृषि पर आश्रित है और शेष २०% का २/५ भाग ग्रामोद्योगो पर। इस प्रकार भारत वास्तविक तौर पर ग्रामीण भारत है और ग्राम्य-भारत के अर्थ है काश्तकार, ग्रामीण कारीगर तथा कृषि पर आश्रित मजदूर।

(५) प्रथम पचवर्षीय योजना मे कृषि के उत्पादन पर पर्याप्त जोर दिया गया है। आगामी योजना मे इसके वढने की और भी अधिक सभावना है। तेजी से वढती हुई जनसख्या इस वात की आवश्यकता को और भी व्यक्त करती है। उपभोग के वर्तमान मान के अनुसार सन् १९५१ के ७०० लाख टन के अन्नोत्पादन को १९६१ मे ८५० लाख टन तक वढाना पडेगा। अन्न के उत्पादन मे वृद्धि का कार्यक्रम इसी अनुपात से कृषि-ऋण व्यवस्था के विस्तार के विना सभव नही होगा।

(६) भारत मे भूमि के वडे-वडे टुकडो का स्वामित्व कम है । और सरकार की भूमि सम्बन्धी नीति से और भी कम होने की सभावना है। यह नीति सामाजिक न्याय की उपलब्धि की दृष्टि से अपनाई गई है। मध्यमवर्गीय तथा छोटे भूस्वामियो की सख्या कुल जनसख्या के ७०% के लगभग है और कृषि-ऋण व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्नो, समस्याओ तथा नीति के निर्धारण मे, इन्ही आवश्यकताओ को ध्यान मे रखना तथा उनका अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। मध्यमवर्गीय तथा छोटे भू-स्वामी इस समय लगभग ४१% उत्पादन करते है। क्योकि वडे-वडे भू-स्वामियो की सख्या कम होगी, उनका स्थान मध्यमवर्गीय तथा छोटे-छोटे भू-स्वामी ले लेगे, अत उत्पादन मे इनका भाग महत्वपूर्ण होता जायगा। प्रथम पचवर्षीय योजना की समाप्ति पर काश्त की हुई भूमि का क्षेत्रफल एक करोड एकड वढ जायगा, परन्तु इससे खेती के अधीन नई भूमि वहुत कम होगी । नई भूमि की उपलब्धि की सभावनाए कम होने के कारण उत्पादन वृद्धि वर्तमान भूमि से ही प्राप्त करनी होगी और उसका ढग गहन कृषि ही होगा। इसके लिए आवश्यकता होगी अच्छे बीजो की, सिचाई के साधनो की, सुधरे हुए उपकरणो की तथा सुधरे हुए कृषि प्रयोगो की। इन सवके लिए पर्याप्त मात्रा मे धन तथा प्रयत्न की आवश्यकता होगी। इसमे से सिचाई आदि के लिए तो कुछ सहायता शासन देगा परन्तु शेप के लिए कृपक को उत्पादन वढाने तथा भूमि सुधारने के लिए ऋणरूपी सहायता को विस्तृत करना पडेगा। यह सहायता उस ७५० करोड रुपये के अतिरिक्त होगी जो वह वर्तमान प्रयत्नो को चालू करने के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण द्वारा प्रति वर्प प्राप्त करता है।

(७) कृषको की वहुत वडी सख्या अपने साधनो से हर फसल के वाद अगली फसल के आने तक अपने परिवार के लिए आवश्यक धन जुटाने मे असमर्थ होती है। इस तरह उसे साधारण तौरपर गुजारा चलाने तथा उत्पादन हेतु ऋण की आवश्यकता होती है। उसे कई वार विवाह, मृत्यु तथा इस प्रकार के सस्कारो पर भी खर्च करना होता है। उसकी भूमि जितनी कम हो, उतना ही अधिक उसे अन्य वधो पर आश्रित होना पडता है। वहुधा वह कृपि-सम्बन्धी श्रम को आय का साधन वनाता है। भले ही उसकी

भूमि अल्प, मध्यम अथवा कुछ अधिक हो, उसे कोई न कोई धधा अपनाना पडता है और यह काम धान कूटना, गुड बनाना, रुई तैयार करना, गोपालन तथा अन्य पशुपालन आदि हो सकते है। फलत कुटीर-उद्योगो का इस क्षेत्र मे बडा महत्व है। अत ग्रामीण ऋण की सन्तोषजनक योजना मे इन सब आवश्यकताओ का ध्यान रखना जरूरी है। समस्या को सवैधानिक ध्येय तथा ग्राम की आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि मे अध्ययन करने पर कृषको की प्रतिभूति देने की क्षमता के समक्ष अल्पकालिक, मध्यकालिक तथा दीर्घकालिक ऋण की शैली के निर्धारण के लिए तथा कृषको के सस्थात्मक ऋण जुटाने के लिए निम्न आवश्यकताओ की पूर्ति करनी आवश्यक है —

क यह शासन की उन नीतियो से सम्बन्धित तथा उनके अनुकूल होना चाहिए जो विशेषतया ग्रामीण उत्पादन की वृद्धि के लिए निर्धारित की गई हो।

ख वह, ऋण के व्यक्तिगत साधनो का प्रभावशाली विकल्प होना चाहिए, भले ही उसका पूरा बदल न हो।

ग इसमे साधनो तथा भली प्रकार प्रशिक्षित कर्मचारी वर्ग का बल होना चाहिए, और वह वित्तीय, प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षण की उन निर्बलताओ से मुक्त होनी चाहिए जो वर्तमान सहकारी ऋण का विशेष दोष है।

घ केवल आन्तरिक तौर पर अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण को ही सम्बन्धित नही करना है, वरन् क्रय-विक्रय, निर्माण तथा कृषक के अन्य आर्थिक कार्यो के साथ भी सगठित करना होगा। और इस मे यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह सरकार तथा उन अन्य सस्थारूपी साधनो से अपने कार्य को सम्बद्ध करे, जो ग्रामीण को कृषि साधनो के विकास, उनके प्रयोगो के पर्यवेक्षण तथा हानियो से बचाने मे मत्रणा तथा सहायता देता हो।

ङ उसे छोटे तथा मध्यमवर्गीय कृषको को ऐसे ढग की प्रतिभूति पर सहायता देने का प्रबध करना चाहिए, ताकि हर कृषक उस सहायता का लाभ उठा सके। दूसरे शब्दो मे इसे ऋण केवल भूमि की प्रतिभूति पर ही नही देना चाहिए वरच अन्य प्रकार की प्रतिभूति तथा आने वाली फसलो पर भी देना चाहिए।

च ऋण रचनात्मक ढंग से उत्पादक ध्येयों तथा उत्पादन के साथ हित बांटना चाहिए। ऋण के प्रयोग का भली प्रकार पर्यवेक्षण करते रहना चाहिए और ऋणी की आवश्यकताओं तथा हितों का भी सर्वदा ध्यान रखना चाहिए।

छ यह सब कार्य ऐसे ढंग से होना चाहिए कि सहकारी ढंग के संगठन से ग्राम और उस संगठन का विकास हो।

(८) इन विचारों को मन में रखकर समिति ने विभिन्न ऋण के साधनों के रिकार्ड का परीक्षण किया। शासन संबंधी तथा निजी साधनों को भी देखा ताकि पुरानी उपलब्धियों तथा भावी सम्भावनाओं को आंका जा सके।

ग—वर्तमान ऋण-साधनों का रिकार्ड

(९) नीचे लिखे गये अनुपात इस बात के द्योतक हैं कि ऋण के प्रधान साधनों का कुल ग्राम्य-ऋण में कितना भाग रहा है—

ऋण साधन	कुल ग्राम्य ऋण में अनुपात
१ शासन	३·३%
२. सहकारिता	३·१%
३ व्यापारिक बैंकिंग (बैंक)	०·९%
४ सम्बन्धी	१४·२%
५ भूमिपति	१·५%
६ कृषक साहूकार	२४·९%
७ साहूकार	४४·८%
८ व्यापारी तथा दलाल	५·५%
९ अन्य	१·८%
योग	१००%

अन्नोत्पादन से सम्बन्धित किया जा सकता है। परन्तु सहकारी व्यापार स्वय ही वडा नगण्य तथा प्रभावहीन है। सहकारी ऋण सहकारी व्यापार से अधिक विकसित है, परन्तु इसके वावजूद कृषको की वहुत वडी सख्या इसके क्षेत्र से वाहर है।

देश के कई वडे भाग अभी ऐसे है जहाँ सहकारिता अभी नही पहुची है। उस क्षेत्र मे जहाँ सहकारिता पहुची है, वहाँ भी कृषको की एक वडी सख्या इसके वाहर है। सदस्यो के लिए भी ऋण की वहुत वडी मात्रा सहकारिता से वाहर के साधनो से प्राप्त होती है। ऐसी परिस्थिति को, पूर्णतया नही तो मात्रा के दृष्टिकोण से, असफलता ही कहा जा सकता है।

(१०) सस्थात्मक ऋण जो किसी गिनती मे आ सकता है वह शासन द्वारा है। चाहे वह केन्द्रीय हो या राज्यो से सम्वन्धित, जो तकावी तथा "अधिक उत्पादन करो" की योजना के अधीन वितरित होता है। परन्तु इस ऋण की मात्रा भी सहकारिता द्वारा प्राप्त ऋण की मात्रा के लगभग वरावर ही है। तकावी के सम्वन्ध मे भी कमेटी का मत यही है कि वह अपर्याप्त रही है क्योकि—

(क) यह राशि मात्रा की कमी, वटवारे की असमानता तथा प्रतिभूति की अनुपयुक्तता के कारण अपर्याप्त रही है।

(ख) समय की असुविधा, स्वीकृति मे देर तथा ऋणियो पर अन्य शर्तो के लादे जाने के कारण भी अपर्याप्त रही है तथा

(ग) सगठन की अपूर्णता व पर्यवेक्षण की ढील ने भी उसे अपर्याप्त रखा है।

शासकीय तथा सहकारी ऋण भी वडे भूस्वामियो तक ही जा सके है, मध्यम-वर्गीय तथा छोटे भूस्वामियो तक नही पहुच सके। न ही इनके पास पर्यवेक्षण हेतु पर्याप्त मशीनरी है, जो यह देख सके कि ऋण उत्पादन के लिए ही प्रयोग मे लाया गया है।

(११) सीधे ऋण-प्रदान करने मे व्यापारी वैको का भाग नगण्य-सा ही हे। यह १% से भी कम ऋण देते रहे है। हा, यह ठीक है कि टेढे तौर पर तो वह साहूकारो को काफी ऋण देते रहे है, जो कृषको को पहुचता है। यह सस्थाए इम्पीरियल वैक सहित वडे-वडे व्यापारी क्षेत्रो मे केन्द्रित है और

अल्प-विकसित क्षेत्र अभी उपेक्षित ही है। ऐसे क्षेत्रो से ऋण प्राप्त करना कठिन ही नही वरन् बहुत महगा भी है। ऐसे क्षेत्रो मे सहकारी सस्थाए भी अल्प विकसित ही है।

(१२) अत कृषक को अपनी ६४% कर्ज की आवश्यकता के लिए अन्य व्यक्तिगत साधनो पर ही निर्भर रहना पडता है। रिश्तेदारो (सगे-सम्बन्धियो) को छोड उसे साहूकार, व्यापारी तथा भूस्वामी से भी ऋण लेना पडता है। कृषक की ७०% ऋण की माग को साहूकार तथा व्यापारी पूरा करते है। इस बात पर कोई ध्यान नही देता कि ऋण किसलिए लिया जा रहा है। साहूकार व्याज की दर इतनी महगी लगाता है, जितनी उससे सम्भव हो सके। व्यापारी उत्पादन पर पेशगी देता है परन्तु उसका मूल्य इतना सस्ता देता है जितना सम्भव हो सके। निर्बल आर्थिकस्थिति तथा गुजारे वाले क्षेत्रो, अर्थात् जहा अपनी आवश्यकताओ के अन्त के सिवा और कोई उत्पादन नही होता, वहा साहूकार का हाथ अधिक रहता है। और जहा रुपया कमाने के विचार से उपज अधिक होती है, वहा व्यापारी आ उपस्थित होता है, परन्तु प्रभुत्व साहूकार का ही रहता है।

(घ) भावी नीति का आधार

(१३) कमेटी का यह विचार है कि जो ऋण कृषक को विभिन्न साधनो से मिलता हे वह न तो ठीक ढग का होता है, न वह आवश्यकता तथा साख की कसौटी पर पूरा उतरता है, और न ही वह उचित व्यक्तियो तक पहुचता ही है। अतः भविष्य के लिए ग्राम्य-ऋण अधिक उत्पादन के लिए ही दिया जाना चाहिए। वह दीर्घ, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओ का पूरक होना चाहिए, इसका पर्याप्त पर्यवेक्षरण होना चाहिए और यह साख वाले कृषको को मुनासिब दर पर प्राप्त होना चाहिए।

भारतीय परिस्थिति मे इसका अर्थ है ऋण का असख्य छोटे-छोटे कृषको तक पहुचना, उनकी प्रतिभूति तथा ऋण-पत्रो पर उसका दिया जाना तथा उसका उपयुक्त पर्यवेक्षरण, ताकि वह उचित कार्यो पर व्यय हो। इसलिए सहकारी समिति के अतिरिक्त और कोई सस्था उपयुक्त नही हो सकती। अधिक उत्पादन की योजना के दृष्टिकोण से प्राइवेट साहूकारो द्वारा ऋण अनुपयुक्त ही रहेगा। और

सस्थाओ द्वारा दिया गया ऋण आदि वह सहकारी सभाओ द्वारा न दिया जाय तो वडे-वडे भूमिपति कृषको तक ही सीमित रह जायगा। अत कमेटी के आगे सर्व प्रथम प्रश्न यह है कि ऐसे हालात पैदा किए जाय कि सहकारिता की सफलता के लिए उचित सभावनाए पैदा की जाय। इसके लिए असफरता के कारणो पर विचार आवश्यक है।

(ड) सहकारी ऋण की असफलता के कारण

(१४) इसके कई कारण दिए जाते हे परन्तु असफलता के सामूहिक चित्र को सामने रखकर यह काम नही किया गया। कार्य, सस्था तथा प्रशासन सवधी त्रुटिया, योग्य कर्मचारियो की कमी, प्रशिक्षण की न्यूनता, जनता की अशिक्षा, सडको आदि का अभाव तथा भण्डारो व अन्य आर्थिक साधनो आदि की असुविधा, सुसगत कारण है। और यह सव सामाजिक तथा आर्थिक है। इनका सम्वन्ध ग्राम्य-सगठन की मौलिक कमजोरियो के साथ है। इन कमजोरियो के कुछेक कारण यथा वर्णभेद सर्वदा रहे है। कुछेक कमजोरिया तो ऐसी है जो कृषि व्यवसाय मे हर जगह रही है। इनमे विशेषता उन कमजोरियो की है जो व्यापारियो के प्रभाव, औद्योगीकरण तथा नगरो के वढते जाने से पैदा हुई है। मुद्रा-प्रभावित इस अर्थ-नीति को इस प्रकार पुष्टि प्राप्त होती रही, विशेषतया वित्तीय सस्थाओ से जो इनकी सहायक रही। औपनिवेशिक शासन मे परिवर्तन होते रहे। यह अधिक मात्रा मे कल्याणकारी तथा लोकतत्री होता गया और अन्ततोगत्वा देश स्वतन्त्र हो गया। परन्तु उसके अधीन पनपती हुई वित्तीय सस्थाए अपरिवर्तनशील रही। इनका ग्राम्य अर्थव्यवस्था, सम्वन्धो तथा हितो से व्यवहार पूर्ववत ही रहा और शक्तिशाली औद्योगिक व्यापारी तथा वित्तीय सस्थाओ मे कोई परिवर्तन नही आया।

(च) ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कमजोरिया

(१५) ग्राम्य अर्थव्यवस्था की निर्वलताओ को दो भागो मे वाटा जा सकता है

(१) आन्तरिक तथा वाह्य आन्तरिक दुर्वलताओ के अग सामाजिक, आर्थिक, शिक्षात्मक तथा औद्योगिक है। इनका सम्वन्ध कास्त की इकाई, सिचाई के साधनो तथा अन्य सुविधाओ की उपलब्धि, सहायक व्यवसायो का

अस्तित्व, उपयोग मे लाई जाने वाली कृषि-विधिया, कृपक की उत्पादन के प्रति अभिवृत्ति, उसके वचत तथा अपव्यय के स्वभाव तथा मार्ग-प्रदर्शन की मात्रा व उससे प्राप्त लाभादि का है। वाह्य दुर्वलताओ का सम्वन्ध ग्राम्य सगठन तथा नगर की अर्थ-नीति के सघर्ष से है। हमारा वित्तीय सगठन प्रधानतया नगरीय है। इसके अग वहुत से है—व्यापारी वैंक, अन्य वैंक सम्वन्धी सगठन, वीमा कम्पनिया, स्थानीय अधिकारी तथा साहूकार आदि। इन सवका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारी अथवा केन्द्रीय वैंक से सम्वन्ध होता है। यह नगरीय व्यापारी सगठन केन्द्रीय व्यापारी तथा वैंक सगठनो से सम्वन्धित है। परन्तु इसमे से कोई सस्था ग्राम्य-अर्थ-व्यवस्था के हित मे काम नही करती। सामूहिक तौर पर इनका वल ग्राम्य-अर्थव्यवस्था के लिए किये गए सव कामो से अधिक है।

(१६) उपरिलिखित दोनो अगो का आपस मे सम्वन्ध है। आन्तरिक निर्वलताए कुछ तो ऐसी है जो कृपि अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत है। परन्तु कुछ ऐसी है जो भारत की परिस्थितियो मे विशिष्ट है, जिनके कारण वाह्य साधनो—यथा वैंको आदि से वहा सहायता नही पहुच सकती। वाह्य साधन ऐतिहासिक तथा वशपरम्परागत अभिवृत्तिया केवल ग्राम्य जनता की ऊपरी सतह तक ही पहुच पाते है।

यह वाह्य उपकरण अपने वल के कारण ग्राम्य अर्थव्यवस्था को पुष्ट करने वाले सव आन्तरिक साधनो को सवल नही होने देते। यह व्याकर्पण अशत निर्वल साधनो के मुकावले मे सवल माधनो के होने तथा साहूकार द्वारा ग्राम मे नगरीय साधनो को प्रवेश कराने से होता है। यह ग्रामो मे निवास तथा सहकारी सभा व पचायतो आदि ग्राम्य-सस्थाओ की कार्यकारिणी समितियो की सदस्यता द्वारा होता है। इस तरह इन सस्थाओ मे भी शक्तिया प्रवल होती है, जो नगरो से वल तथा प्रेरणा प्राप्त करती है। यही तत्त्व ग्रामीण सस्थाओ मे सवसे आगे रहते है—चाहे वह सस्थाए निर्वाचित हो या मनोनीत। इनको कई प्रकार के लाभ होते है—यथा भूमि का स्वामित्व, ऋण-प्रदान मे अधिक साधनो की प्राप्ति, शिक्षा, सरकारी भाषा का ज्ञान तथा सरकारी कर्मचारियो के सम्पर्क से प्रभाव। इन्ही वातो से गाव मे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जिससे उन्हे भला-वुरा करने का अनुचित वल प्राप्त हो जाता है। दूसरे लोगो, लेखको, प्रकाशको और कमेटियो

ने शिक्षात्मक तथा वर्ण-भेद-मूलक सामाजिक दुर्बलताओ की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। परन्तु समस्या ने जो रूप धारण कर लिया है उसका इलाज ग्राम के आन्तरिक साधनो से नहीं हो सकता, उनमे इतना बल नहीं।

(१७) इस विवरण से यह प्रकट हो जाता है कि बाह्य तथा आन्तरिक कारणो को इकट्ठा देखा जाय तो सहकारी ऋण व्यवस्था की असफलता प्रकट हो जाती है। क्योंकि यह सस्थाए न तो अधिक जिम्मेदारी लेना चाहती है और न ही सदस्य बढ़ाना। बाह्य बैंक-सम्बन्धी तथा अन्य वित्तीय-तत्र का मुकाबला भी इनके लिए कठिन है। स्वभावत नगरीय वृत्ति वाले व्यक्तियो की ग्रामीणो से सहानुभूति भी कम होती है और न वे उनकी समस्याओ को समझ सकते है। यह बात भी सहकारिता को कमजोर करने का एक प्रधान कारण बन जाती है।

(१८) इसलिए ग्राम्य-ऋण भारत की परिस्थितियो मे एक बडी महत्त्वपूर्ण समस्या बन जाती है क्योंकि इसका केन्द्र-स्थान ग्राम है, परन्तु इसके कारण तथा प्रतिकार ढूढने के लिए ग्रामो से बाहर जाना पडता है। इस मात्रा तक समस्या केवल मात्र ग्रामीण नहीं रहती। समस्या केवल ऋण पर ही सीमित नही रहती, क्योंकि इन आवश्यकताओ की पूर्ति के पीछे एक सामाजिक पृष्ठभूमि तथा इतिहास है, जिसका सम्बन्ध राज्य तथा उसकी वित्तीय सस्थाओ से है। इस तरह प्रश्न और भी विस्तृत हो जाता है। और इस तथ्य का भी विचार करना आवश्यक हो जाता है कि आज के युग मे सत्ता तथा महत्त्व अधिकतर नगरो और राजधानियो मे एकत्रित है, इसीलिए ग्राम्य-ऋण की समस्या की पूर्ति के लिए नागरिक सस्थाओ तथा अभिवृत्तियो की विवेचना आवश्यक हो जाती है।

(१९) अत नीति का प्रथम दोहरा ध्येय यह होना चाहिए कि ग्राम्य-सगठन की [illegible]रिक निर्बलताओ को दूर किया जाय तथा बाह्य कुचक्रो का प्रतिकार [illegible] जाय। इस प्रकार ग्रामीण ऋण की समस्या ग्रामो के सामाजिक पुन सगठन से पृथक हो जाती है। भले ही यह विचित्र लगे परन्तु ऋण की समस्या प्रधानतया ऋण-समस्या न रह कर ग्रामीण वाली साख या ऋण की समस्या बन जाती है।

पूर्व जो भी इलाज किये गए वह वस्तुत आन्तरिक निर्बलताओ को

कम करके कमजोर का बलवान से मुकावला कराने के रहे। उन परिस्थितियो मे उनकी सफलता की कोई सम्भावना न थी। इसलिए वह प्रयत्न वचत, जीवन-सुधार आदि पर ही केन्द्रित रहे, जिनमे दो अर्थावस्थाओ के समायोजन का कोई प्रावधान न था। कमजोर और बलवान की इस लडाई के लिए मैदान साफ किया गया परन्तु नियम बलवान के पक्ष मे थे। अत प्रथम कार्य यह हो जाता है कि इस दशा का सुधार किया जाय, ताकि सहकारी समितिया ठीक ढग से काम कर सके। इसके विना यह आशा करना कि ग्रामीण ढाचा स्वयमेव ठीक हो जायगा, एक विडम्बना है। वहुद्देशीय समितियो का विचार कितना ही व्यापक बनाया जाय परन्तु वह तव तक सफल नही हो सकता जव तक कि अधिक वडी तथा सगठित समितिया किसी विशेष ध्येय के लिए न बनाई जाय। जीवन-सुधार का ध्येय बाद की बात होगी। भारतीय कृषि वहुधा व्यापारिक प्रक्रिया से अलग समझी जाती रही है, जिसे कई पश्चिमी देशो मे जीवन का एक तरीका समझा जाता है। अत समस्या यह बन जाती है कि इसे जीवन का एक तरीका बनाया जाय और तत्पश्चात जीवन-सुधार के ध्येय की प्राप्ति की जाय। इसलिए ऋण का क्रय-विक्रय, निर्माण तथा अन्य सम्बन्धित कार्यो के साथ ही विचार करना पडेगा। यह सब बाते एक साथ चलेगी। बडी-वडी समितिया इसलिए आवश्यक हैं। अनुकूल परिस्थितिया पैदा करनी पडेगी और इनमे सम्मिलित होगे—(१) वित्त, (२) वित्त का लचीलापन तथा (३) व्यापार विधि। इस विषय मे सबसे आवश्यक बात यह है कि जो सामर्थ्य अथवा प्रभाव इनमे पैदा हो, वह व्यक्तिगत व्यापारी तथा अन्य व्यक्तिगत हितो के मुकावले मे अधिक प्रभावशाली होना चाहिए। सहकारी सगठन के आन्तरिक साधनो से इसकी प्राप्ति सभव नही।

(छ) समाधान का साधन—राजकीय भागीदारी

(२१) कमेटी की राय है कि प्रारम्भिक दशा के मुकावले और शक्तिशाली होने के लिए जरूरी है कि उचित और आवश्यक मात्रा मे सरकार की तरफ से सहायता मिले। यह सहायता केवल प्रशासनिक ही नही होनी चाहिए। अभी तक राज्य की सहायता का यह तरीका रहा है कि प्रशासन की ओर ध्यान अधिक रहे और वित्तीय सहायता कम रहे। परन्तु यह पर्याप्त नही,

जबकि समस्या केवल मात्र ग्रामीण स्थिति के अनुसार ऋण की ही नही, वरन् कृषि-विकास तथा कृषि-उत्पादन के क्रय-विक्रय की भी है। सारे प्रोग्राम मे प्रशासनिक तथा प्रशासनिक-सगठन को बदलने की आवश्यकता है। इसमे ग्राम्य-आत्मा तथा ग्राम्य-निदर्शन का सगठित होना वाछित है। इस प्रकार का सगठन सरकार तथा सरकार की शक्तिशाली सस्थाओ से ही प्राप्त हो सकता है। इस समय सहकारी ढाचे की नीव मे एक निर्वलो का सगठन है। सरकार शिखर पर से निर्वलो के हित के लिए इसमे सम्बन्धित रहनी चाहिए। प्रभावशाली कार्यक्रम तभी बन सकता है जब एक सिरे पर सहकारी समितियो से सरकार इसलिए सबधित होती है कि ग्राम मे विकास-मनोवृत्ति पैदा हो, जो सफलता के लिए परमावश्यक है।

(२२) इस प्रकार कमेटी की सिफारिशो मे एक महत्वपूर्ण मौलिक मत यह है कि सरकारी परामर्श तथा सरकारी सहायता ही नही, वरन् सहकारी-ऋण, क्रय-विक्रय तथा निर्माण मे सरकारी हिस्सेदारी भी होनी चाहिए। चूकि बैंकिग के ढाचे के कार्यो का सहकारी ऋण पर विशेष प्रभाव पडता है, अत सहकारी ऋण तथा भण्डारो का सस्थात्मक विकास, निर्माण और क्रय-विक्रय आदि से सजीव रूपेण सम्बन्ध है। दो और मौलिक रूप मे विचारणीय विषय है जिनका कमेटी की सिफारिशो से गूढ सम्बन्ध है। वह है सरकार का व्यापारी बैंको के विशिष्ट भाग से दृढ सम्बन्ध की स्थापना तथा राजकीय सूत्रपात द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर भण्डारो की सस्था का राजकीय हिस्सेदारी द्वारा प्रोत्साहन और निर्माण। इसके साथ ही होगा अखिल-देशीय सब स्तरो पर प्रशिक्षण हेतु व्यापक कार्यक्रम का बनाया जाना।

(ज) ग्राम्य ऋण की एकीकृत योजना

(२३) ग्रामीण ऋण की एकीकृत योजना, जो पूर्व विश्लेषण के फलस्वरूप निकलती है, के तीन मौलिक सिद्धान्त है—(क) विभिन्न स्तरो पर सरकारी हिस्सेदारी, (ख) ऋण तथा अन्य आर्थिक कार्यो का समन्वय तथा (ग) ग्रामीण लोगो की आवश्यकताओ के अनुसार प्रशिक्षण प्राप्त कर्मचारी वर्ग।

ऋण या साख—सहकारी ग्रामीण ऋण सस्थाओ मे सरकारी हिस्सेदारी, जिसमे वित्तीय हिस्सेदारी भी शामिल है ताकि यह ऋण-सस्था पुष्ट और विस्तृत होकर उत्पादन के ध्येय की पूर्ति हेतु ग्रामीण उत्पादक को उचित और आवश्यक लाभ पहुचा सके।

निर्माण, क्रय-विक्रय तथा भण्डार—राजकीय हिस्सेदारी, जिसमे वित्तीय हिस्सेदारी शामिल होगी, ग्रामीण उत्पादक के लाभ के लिए निर्माण तथा क्रय-विक्रय तथा भण्डारो के सहकारी सगठन मे करनी आवश्यक होगी। इस सम्बन्ध मे राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा भण्डार परिषद्, अखिल भारतीय भण्डार निगम तथा राज्यो की भण्डार सम्बन्धी कम्पनिया शामिल होगी, ये वित्तीय हिस्सेदारी सहित राजकीय हिस्सेदारी, सरकारी सगठन के प्रोग्राम मे ग्रामीण उत्पादक के लाभ के लिए उन कार्यो मे सहायक होगी जो कि उसे काश्तकार की हैसियत मे अथवा कृषि मजदूर की हैसियत मे अथवा शिल्पकार की कोटि मे महत्वपूर्ण होते है। और इन कार्यो मे कृषि, सिचाई, बीज, खाद-प्रबन्ध, मछली-पालन, गोपालन, दुग्ध उत्पादन आदि ग्रामोद्योग भी शामिल होगे।

व्यापारिक अधिकोष—देश के व्यापारी बैको का एकीकरण करके उसके एक निर्दिष्ट भाग मे सरकार की हिस्सेदारी इसलिए रखना कि इस तरह बनी हुई साख भी जितना अधिक सम्भव हो सके, उतना ग्रामीण सहकारी बैक के कार्य को सहायता दे। यह उन सब सभव तरीको से इस कार्य मे सहायता देगी जितने उसे प्राप्य हो। विशेष रूप से इस सहायता के ढग ऐसे होगे जिनसे ग्रामो के अथवा देश के उन भागो को लाभ पहुँचेगा जहाँ अब तक बैक सबधी सुविधाए नही पहुच पाई।

प्रशिक्षण—इस प्रकार सरकार पर जो नया भार आ पडा है उसके लिए आवश्यक है कि ग्रामीण जनता के हित के लिए ऐसे लोगो को प्रशिक्षण दिया जाय जो गामीण मनोवृत्ति का सम्मान करते है और समझते है।

राजकीय हिस्सेदारी तथा राजकीय हस्तक्षेप पर प्रतिबंध—राजकीय हिस्सेदारी की मात्रा तथा ढग का इस प्रकार निर्धारण करना होगा कि नई नीतियो के लिए उचित वातावरण पैदा हो। परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि आन्दोलन का मौलिक स्वरूप न बदले, और न सहकारी समितियो के कार्यो मे राज्य का दैनिक हस्तक्षेप हो। जहा तक सहकारी ऋण तथा सहकारी

आर्थिक क्षेत्र मे जो सरकारी हिस्सा हो उसकी मात्रा निर्धारित की जाय कि— (क) मूल की ग्रामीण सरकारी सस्थाए निश्चित काल मे राजकीय हिस्सेदारी को सदस्यो के बढे हुए हिस्सो द्वारा प्रतिस्थापित करके पूर्णरूपेण सहकारी हो जाय, (ख) इससे ऊपर के स्तर मे यह सहायता उस समय तक चलती रहे, जब जब तक कि मूल की ग्रामीण सहकारिता पर्याप्त रूप मे विकसित हो कर पुष्ट नही होती, और जब तक उसे व्यक्ति तथा निहित स्वार्थो से मुकाविले की आवश्यकता रहेगी तथा अन्य कई कारणो से जब तक वित्तीय तथा व्यावसायिक दृष्टि से सहायता की आवश्यकता रहे।

वित्त तथा निधियां—कमेटी ने यह भी प्रस्ताव किया है कि इस पुनर्सगठन के लिए तथा नियमपूर्वक वित्तीय सहायता देने के लिए कुछ कोष बनाए जाय और वे यह है—

(१) **रिजर्व बैंक के अधीन** (क) नैशनल एग्रीकल्चरल क्रेडिट अर्थात् राष्ट्रीय कृषि ऋण निधि (दीर्घकालीन कार्यो के लिए)।

५ करोड रुपये वार्षिक, प्रारम्भिक ५ करोड की अप्रत्यावर्ती, अशदान के अतिरिक्त।

(ख) दी नैशनल एग्रीकलचरल क्रेडिट फण्ड अर्थात्, राष्ट्रीय कृषि-ऋण स्थायीकरण कोष (१ करोड रुपया वार्षिक)।

(२) **अन्न तथा कृषि मत्रालय के अधीन** दी नेशनल एग्रीकल्चरल क्रेडिट (रिलीफ फण्ड गारटी) फड अर्थात् राष्ट्रीय कृषि-ऋण (प्रतिकार तथा प्रतिभूति) निधि। (१ करोड रुपया वार्षिक)

(३) **राष्ट्रीय सहकारिता विकास तथा भण्डार के अधीन**—(क) दी नेशनल कोओपरेटिव डेवलपमेट फड, अर्थात् राष्ट्रीय सहकारी विकास-निधि। (ख) दी नेशनल वेयर हाउसिंग डेवलपमेट फड अर्थात् राष्ट्रीय भण्डार विकास-निधि।

[५ करोड रुपये वार्षिक जो (क), (ख) मे बटेगा जिसके अतिरिक्त (ख) के लिए प्रारभिक अप्रत्यावर्ती ५ करोड का अशदान होगा।]

(४) **स्टेट (राजकीय) बैंक के अधीन**—एकीकरण तथा विकास-निधि।

(५) **हर राज्य के अधीन**—(क) दी स्टेट एग्रीकल्चरल क्रेडिट (रिलीफ-

) फड तथा राज्य कृषि-ऋण (प्रतिकार तथा प्रतिभूति) निधि।

(ख) दी स्टेट कोआपरेटिव डेवलपमेट फड अर्थात् राज्य सहकारी विकास निधि।

(६) हर राज्य सहकारी बैंक अथवा केन्द्रीय सहकारी बैंको के अधीन—दी एग्रीकल्चरल क्रेडिड फड—अर्थात् कृषि-ऋण निधि। इन निधियो मे पाच राष्ट्रीय निधिया बडे महत्व की हे। यह प्रस्तावित किया गया है कि निधियो के लिए प्रस्तावित राशि पर ५ वर्षो के पश्चात् पुनः विचार किया जाय।

यदि इस रिपोर्ट के सारे सुझावो को यहा उद्धृत किया जाय तो एक बडी पुस्तक बन जायगी। अतः उपरोक्त सुझावो के बहुत संक्षिप्त विवरण पर ही सन्तोष किया गया है। उक्त कमेटी की या एकीकृत योजना मे ऋण समस्या को शेष समस्याओ से पृथक् न समझ कर योजना मे उन सब कार्यो का समावेश किया गया है। प्रथम के लिए ऋण की आवश्यकता होती है, द्वितीय के द्वारा उसकी वापसी होती है और तृतीय के द्वारा भविष्य मे ऋण की आवश्यकता नही रहती।

रजिस्ट्रार सम्मेलन—इस रिपोर्ट के पश्चात् रजिस्ट्रारो का सम्मेलन हुआ, और उसमे रिपोर्ट की प्रायः सभी सिफारिशो का समर्थन किया गया। केन्द्रीय सरकार और उसके कृषि मत्रालय ने भी इस ओर विशेष ध्यान दिया। लोक-सभा ने इसको कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक अधिनियम बनाए और प्रचलित करने के लिए पर्याप्त तेजी से काम किया। स्टेट बैंक बन चुका है। सभी राज्यो मे बडे सहकारी अधिकोषो—बैंको की स्थापना हो चुकी है। लोकसभा ने राष्ट्रीय-निधि तथा भण्डार-नियमन-सस्था की स्थापना हेतु आवश्यक अधिनियम बना दिये है। प्रशिक्षण हेतु रिजर्व बैंक ने समितियो का स्वयमेव अथवा आर्थिक सहायता देकर पर्याप्त प्रबन्ध कर दिया है और कर रहा है। परन्तु सारी रिपोर्ट तथा इसके प्रस्तावो मे दो विशेप त्रुटिया है, जिनका समाधान हुए बिना यह कार्य सफल नही हो सकता। प्रथम तो यह कि जो वणिक शताब्दियो से समाज की सेवा करता आया है, जिसकी भारत मे प्राचीन धारणा यह थी कि वह समाज का केवल अमानतदार है, जिसके ऋण की मात्रा आज भी ६०% के लगभग है। क्या हम इन सब उपायो के बिना कोई और व्यवसाय दिये बिना बनिये का पूर्ण बहिष्कार करके सफल हो जायगे? और क्या हम कृषक मे इस तरह साहूकारी मनोवृत्ति पैदा करके गरीब कृषक के लिए जौक के स्थान

पर एक भेडिये के आगे नही फेक देगे ? जो कि स्वर्गीय प्रो० वृजनारायण के कथनानुसार हड्डियो को भी चवा जाता है। गत अर्द्ध शताब्दी के अनुभव से इसका उत्तर नकरात्मक मिला है। द्वितीय त्रुटि यह है कि राजकीय हिस्सेदारो द्वारा नियत्रण तथा हस्तक्षेप का अधिकार जिस कर्मचारी वर्ग को होगा, उसका अपना तो कोई वैयक्तिक हित उसमे न होगा, तो क्या उनमे परोपकार, सेवा तथा ग्रामीणो से सहानुभूति के भाव केवल मात्र प्रशिक्षण द्वारा पैदा किये जा सकेगे। इतिहास तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के वर्षो का अनुभव इसके भी विरुद्ध है। इन त्रुटियो के सम्वन्ध मे हमे क्या करना चाहिए। इस समाधान मे मै अपने सुझाव उपयुक्त स्थल पर पाठको के सामने रखूगा।

फोर्ड फाउडेशन और ग्राम्य ऋण—स्वतन्त्रता के पश्चात् अमरीका से हर प्रकार की सहायता मिली है और इस कार्य मे सवसे प्रमुख हाथ फोर्ड फाउण्डेशन का रहा है। राष्ट्रीय विस्तार योजना तथा सामुदायिक विकास योजना इसी सस्था की देन है। उसकी कार्यपद्धति की मौलिकता इस वात मे है कि इस मे विशेष वैज्ञानिक तथा अन्य ज्ञान का सीधा सबध उस क्षेत्र तथा ग्रामीण या कृषक के साथ जोड दिया जाता है, अर्थात् जिसके लिए वह ज्ञान उपयोगी है। अत इस सहायता के दो प्रमुख अग है—एक अन्वेषण और दूसरा उससे सबधित क्षेत्र मे उसका प्रयोग। यह सामयिक ही था कि सामूहिक विकास योजनाओ को परिचालित करने के लिए, जो अमरीकन आए उनको ग्रामीण ऋण की समस्या सव से वडी व आवश्यक लगी। अत· इस समस्या पर फाउण्डेशन ने चेस्टर सी डेविस को नियुक्त किया। इनकी रिपोर्ट भी पठनीय है और विचारणीय सामग्री तथा सुझाव प्रस्तुत करती है। इसके कुछ अशो का सक्षेप मे उद्धृत किया जाना समस्या के समझने के लिए लाभप्रद होगा। इनका कहना है कि अखिल भारतीय ग्रामीण-ऋण प्रवन्ध के लिए एक सतोषप्रद ढाचा एकदम तैयार नही हो सकता। यह शनै -शनै विकसित होगा और इसके परिवर्धन के लिए एक प्रभावशाली सगठित—केन्द्रीय और राज्यो के—प्रयत्न की आवश्यकता होगी।

(१) केन्द्रीय वित्तसस्था के विकास कार्य मे पहले ग्रामीण ऋण-सस्था की एक सगठित योजना वनानी चाहिए। और फिर वित्तीय सस्था का उपयुक्त ढाचा तैयार किया जाय और विकसित किया जाय।

वाले गरीब किसानो की सख्या अधिक है। उनकी सहायता केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो द्वारा ही होनी उचित है ताकि इनका वित्तीय स्तर उन्नत किया जाय।

(९) रिजर्व बैंक तथा प्रशिक्षित कर्मचारी वर्ग की आवश्यकता के सम्बन्ध मे ग्रामीण ऋण अनुसधान समिति तथा इनके विचार समान ही है। परन्तु प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे इनका सुझाव है कि कर्मचारीवर्ग ग्रामो मे सहकारी कार्य के सगठन की ओर विशेष ध्यान दे।

इस रिपोर्ट मे सबसे अद्भुत तथा सहकारी इतिहास व पाठको को प्रतिगामी जान पडने वाला सुझाव ग्रामीण साहूकार को साथ लेने का है। कहना नही होगा कि ग्रामीण साहूकार के शोषण द्वारा ही किसान का आर्थिक आधार जर्जरित हुआ और सहकारी पद्धति की ओर ध्यान गया, परन्तु इसका प्रधान उत्तरदायित्व साहूकार पर न होकर सरकार के उन नये कानूनो पर भी रहा, जिन्होने समाज से मौलिक ईमानदारी को समाप्त किया। इसमे सन्देह नही कि सहकारी ऋण उत्पादक ध्येयो के लिए ही देना चाहिए। परन्तु किसान की आवश्यकताए तो और भी होती है। यदि उसकी सब आवश्यकताए सहकारी-ऋण द्वारा पूरी नही होती तो बेचारे किसान को साहूकार का आश्रय लेना पड जाता है। और साहूकार, जो कल किसान को अपना जीवन-स्रोत समझता था, आज के प्रचार से आशकित हो उठा है और वह किसान से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता है।

श्री डार्लिग का मत—यदि ५० वर्षो के प्रयन्न द्वारा भी हम सहकारी तथा सरकारी साधनो द्वारा ५% तक ही किसान की ऋण-आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके है, तो यह स्पष्ट है कि हमने समस्या का वास्तविकता के दृष्टिकोण से अध्ययन नही किया। ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट पर इस सम्बन्ध मे श्री डार्लिग के लेख के निम्न उद्धरण पठनीय है —

"अगला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि ऋण अधिक मात्रा मे प्रवाहित होने लगे तो इस बात की क्या गारटी होगी कि वह ऋण श्रमिक को ही जायगा, या इस बात की कि अधिक धन-सम्पन्न कृषक रुपये की वापसी समयानुसार कर देगा, वह अधिक सतर्क होगा और कम लापरवाह होगा। एक अरब लोकोक्ति है कि अरब की अपनी और

समस्याए होती है और ऊट की अपनी। सरकार तथा किसान की भी ऐसी परिस्थिति रही है और अब भी ऐसी अवस्था हो सकती है। रिपोर्ट ने भारतीय कृषक के मौलिक आचार पर बहुत कम ध्यान दिया है, जो कि इतना अतिथि-भक्त, इतना धीर तथा इतना कठोर काम करने की क्षमता रखने वाला है, परन्तु जो व्यापारिक ढग से पूर्णतया अपरिचित है, और साधारणतया अपनी परम्परागत आवश्यकता पूर्ण होने पर वह अधिक धन की लालसा नहीं रखता। वह प्रथाओ का दास है तथा धार्मिक भावनाओ के अधीन उसे पूर्णतया निरर्थक पशुओ की हत्या से और बन्दरो तथा चूहो से फसल बचाने तक की भी मनाही है।

क्या यह सब बाते सरकारी भागीदारी से तब्दील हो जायगी? नये कर्मचारियो की भरती तथा उनके प्रशिक्षण से बहुत-सी आशाए रखी जा रही है। परन्तु बडी मात्रा मे कर्मचारी वर्ग की वृद्धि से क्या यह कठिन नही होगा कि हम चाहे कितने ही उत्कठित क्यो न हो, उन्हे अफसर बनने से बचाया जाय?

कमेटी ने अधिक ऋण देने के लिए कम से कम कागजी तौर पर, एक मजबूत बात तैयार की है परन्तु मैं प्रोफैसर कारवर के इस निष्कर्ष को नही भूल सकता, "किसान जो कि ठीक हिसाब नही रख सकता (और भारत मे भला कितने ऐसा करते है?) और जिन्हे मूल्यो के सबन्ध मे कोई विशेष धारणा नही है, को ऋण से प्लेग की तरह बचना चाहिए।" परन्तु यह योजना के युग से पूर्व लिखा गया था, और कठिनाई यह है कि एक योजना से दूसरी योजना की आवश्यकता पैदा होती है और इसी कारण वर्तमान योजना मे सब से अधिक! परन्तु जो भी विचार कोई इस सम्बन्ध मे रखे, कमेटी इस महत्वपूर्ण रिपोर्ट के लिए बधाई की पात्र है और यह उन सब देशो को ध्यान देने योग्य है जो बढती हुई जनसख्या के विचार से उत्पादन की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील है।"

समस्या का निष्कर्ष—सहकारिता के आगे ऋण-पक्ष मे जो समस्या है उसको यदि सूत्रबद्ध किया जाय तो उसके ध्येय इस प्रकार कहे जा सकते हैं—

(१) किसान बचत सीखे।

(२) उसे उत्पादक प्रयोजनो तथा आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ऋण उपलब्ध हो।

(३) ऋण पर ब्याज के दर उचित हो।

(४) ऋण लौटाया जाय।

(५) शनै-शनै किसान ऋण-मुक्ति की ओर अग्रसर हो।

हम देख चुके है कि ५५ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् सहकारी समितिया तथा सरकार मिलकर ६.८% मात्रा मे किसान की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके है, और बनिया अब तक भी ६९.१% ऋण उन्हें देता है। इस असफलता का कारण है मानव की स्वाभाविक वृत्तियो को समझने तथा उनका आदर करने से इन्कार। श्री चेस्टर सी डेविस ने इसी दृष्टिकोण की ओर ध्यान देकर साहूकार का प्रयोग करने तथा ऋण के दर उपयुक्त रखने, और बहुत न घटाने की सलाह दी है। श्री डार्लिंग महोदय ने भी इसी ओर सकेत किया है जब कि वह कहते है कि 'अरब की समस्या अपनी है और ऊंट की अपनी।' ग्रामीण ऋण-सर्वेक्षण समिति ने भी सगठित सहकारी पद्धति का सुझाव देकर समस्या के एक महत्वपूर्ण पक्ष को पकडने का प्रयत्न किया है।

सहकारी समितियो के इस पक्ष मे असफलता के सम्बन्ध मे श्री लोबो प्रभु ने लिखा था कि जब वह जिला गोरखपुर (यू० पी०) मे थे तो उन्होने देखा कि समितिया प्रथम श्रेणी दर्जे से शुरू होती है। हर वर्ष उनका दर्जा गिरता जाता है और ६-७ वर्ष मे उनको समाप्त करना पडता है। इसलिए उन्होने सुझाया कि हर सहकारी समिति का एक केन्द्रीय आधार होना चाहिए और उसे केवल ऋण कार्य पर ही आश्रित नही रहना चाहिए। इसी क्रम पर कइयो ने भण्डार आदि का कार्य अपनाया परन्तु वह भी कंट्रोल के कारण ही पनपा, अन्यथा नही। किसान की इस समिति का मौलिक आधार भी जब तक कृषि न होगा वह पनपेगी नही। लेखक ने हिमाचल प्रदेश मे हर समिति के लिए कृषि-क्षेत्र का मौलिक आधार बनाने का यत्न किया, परन्तु समयाभाव से इस प्रयोग का परीक्षण न हो सका। समस्या के इस पक्ष पर उपयुक्त स्थल पर विचार करेंगे। यहा पर ऋण-सम्बन्धी प्रश्न पर ही विचार करना ठीक है। इस सम्बन्ध मे श्री चेस्टर सी डेविस की मत्रणा बडी व्यावहारिक मालूम देती है, क्योकि ग्रामीण बनिया व साहूकार अभी तक किसान के विश्वास का पात्र बना हुआ है। वह श्री डार्लिंग महोदय द्वारा सकेतित कृषक की आवश्यकताओ को पूरा करता है। उससे ऋण प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही होती। बनिया अपनी दूकानदारी, किसान को ऋण दिए बिना चला नही सकता, और बनिये

के लिए और कोई व्यवसाय भी सहज प्राप्य नही, जो वह अपने वर्तमान व्यवसाय को छोडकर अपनाए।

ऐसी परिस्थिति मे यदि साहूकार को सहकारी परिवार मे शामिल करके हम अपना ध्येय प्राप्त कर सके तो कोई अनुचित बात नही। हम यह एक भ्रान्त-धारणा कर बैठे हैं कि साहूकार व बनिये को रचनात्मक वृत्ति की ओर आकर्षित नही किया जा सकता। मानव स्वभावत दुष्ट नही है। समुचित वातावरण पैदा करके उसकी दैवी प्रकृति को जागृत किया जा सकता है और उसे समाज-सेवी बनाया जा सकता है। क्या यह ठीक नही कि हमने अवधि का कानून बनाकर व्याज-दर-व्याज की प्रथा जारी की और प्राचीन क्रम को गवाया ? यही वातावरण और परम्पराए यदि बदल जाय तो बनिया हमारा वास्तविक कल्याण-कारी बैंकर बन सकता है। इसलिए उपयुक्त होगा कि ऋण के आदान-प्रदान के कार्य को इस प्रकार आयोजित किया जाय कि—

(क) सहकारी समिति के क्षेत्र मे बसने वाले समस्त बनियो व साहूकारो को समिति का सदस्य बनाया जाय।

(ख) समिति यह निश्चय करे कि कोई भी सदस्य ऋण का आदान-प्रदान सभा से अनुमति-पत्र प्राप्त किये बिना न कर सके, और उसमे लिखी शर्तो का पालन करे।

(ग) कोई भी लाइसेंस-प्राप्त समिति की अनुमति बिना तथा समिति द्वारा निर्धारित प्रयोजनो के अतिरिक्त ऋण न दे सके।

(घ) व्याज के दर तथा किस्त की मात्रा भी समिति निर्धारित करे।

(ङ) ऋण के लिए यदि रुपया बनिये को महत्तम ऋण सीमा के अन्दर समिति दे तो बनिया १% प्राप्त करे और जब रुपया बनिये का हो तो सभा उससे १% प्राप्त करे।

यह मोटे-मोटे सुझाव है। इन्हे परिष्कृत तथा परिमार्जित किया जाय तो यह अल्पकाल मे सम्भव हो सकेगा कि ८०% किसानो का ऋण सहकारी समितियो द्वारा तथा सहकारिता के उद्देश्यो के अनुसार प्रवाहित होने लगे। और इसलिए कि किसान ऋण, उत्पादक, कृषि के लिए लाभप्रद, अधिक ऋण लेने के स्वभाव की समाप्ति तथा बचत के स्वभाव को क्रियात्मक प्रोत्साहन देने के लिए ही प्राप्त कर सके। यह आवश्यक है कि सारा ऋण सहकारिता की

मध्यस्थता द्वारा ही दिया जाय और ऋण एक भयावनी तथा हानिकर वस्तु के स्थान पर सामाजिकता की पुष्टि मे सहायक हो। इसका कही और किसी स्तर पर भी दुरुपयोग न हो सके। मूलत ऋण तो उस सामाजिक पारस्परिक सहायता का प्रतीक है, जहा सहानुभूति के भावो से अभिप्रेरित होकर एक मानव दूसरे को आर्थिक पतन से वचाने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करता है। अत इसका यह मूल ध्येय तभी पूर्ण हो सकता है, और होगा जव शत-प्रतिशत ऋण सहकारिता द्वारा ही प्रवाहित हो।

: ४ :

सहकारिता और कृषि

ससार को सभ्यता के युग मे लाने वाला प्रारम्भिक व्यवसाय कृषि है। कन्द-मूल के जगत से आगे निकलकर मानव ने अन्नोत्पादन का कार्य जव प्रारभ किया तभी मानव जगत मे उन्नति के एक नये इतिहास का श्रीगरोश हुआ। इस आरभिक-व्यवसाय मे कतिपय विशेपताए है, जिनको ध्यान मे रखे विना कृषक की समस्याओ पर सफलतापूर्वक विचार नही किया जा सकता। कृषि एक ऐसा कार्य है, जहा—

(१) कृषक को प्रकृति पर आश्रित रहना पडता है।
(२) कृषक को कभी-भी किसी अनुपात से उपज प्राप्त नही होती।
(३) शेष जितने भी व्यवसाय करने वाले है, उनका मूल आधार यही व्यवसाय है क्योकि शरीर-रक्षा के साधन यही जुटाता है।
(४) क्योकि हरेक मनुष्य के जीवन का आधार अन्न है, अत हरेक चाहता हे कि अन्न के भाव सस्ते रहे, जिससे प्राकृतिक तौर पर कृषक घाटे मे रहता है।
(५) अन्नोत्पादन हमेशा घाटे का काम होता है और इसी तरह उपरोक्त कारणो से कृषक ने हिसाव रखना छोड रखा है अथवा उसकी प्रवृत्ति ही नही।
(६) कृषि रचनात्मक व्यवसाय होने के कारण उत्पादक को पौधो के सृजन व

परिवर्धन् मे आनन्द मिलता है। ज्यो ही उनमे हिसाब की वृत्ति आ जायगी, वह अन्न के स्थान पर भाग, अफीम आदि के अधिक लाभप्रद उत्पादन को अपनायगा।

(७) कृषि मे उपज के वितरण से कृषक प्राय एक सेवा का-सा आनन्द अनुभव करता है।

(८) कृषि मे काम व्यक्ति का नही वरन् समुदाय का होता है। अत त्याग-युक्त स्नेह की भावना-जनित सहकार्य की भावना इस व्यवसाय के मूल मे स्वयमेव निहित होती है।

इन मौलिक धारणाओ को ध्यान मे रखकर ही कृषि तथा सहकारिता के सम्बन्धो तथा कृषि मे सहकार्य की चेष्टा आगामी पन्नो मे की जा रही है। 'यह तो सर्वविदित ही है कि ससार मे कृषि पर निर्भरता रखने वालो की एक बहुत बडी सख्या है। भारत मे तो ७०% लोग गावो मे बसते है। इन सबका प्रधान व्यवसाय कृषि ही है। क्योकि गावो मे जो और व्यक्ति भी काम करते है वे सब भी कृषि पर ही आश्रित होते है।

भारत के विकास व उन्नति के अर्थ है—भारत के ग्रामीणो का विकास तथा उन्नति। और भारत के ग्रामीणो की उन्नति का प्रधानतया अर्थ है, कृषको और कृषि की उन्नति, जिसके लिए जहा उन्नत कृषि के उपायो, अच्छी खाद, विकसित बीजो, क्षेत्र-एकीकरण, बटबन्दी आदि की आवश्यकता है। वहा सब से अधिक आवश्यकता है एक ऐसे सगठन की जिससे कृषक-समुदाय पुष्ट और विकसित होकर अपनी बेहतरी के लिए काम कर सके। यह सर्व सम्मत मत है कि सहकारी पद्धति ही इसके लिए परमोपयोगी साधन है।

भारतीय सहकारिता के इतिहास मे होशियारपुर(ऊना) के पजौर नामक ग्राम की एक सहकारी सभा का वर्णन एक अन्य पुस्तक मे किया जा चुका है। भैय्याचारी ग्राम, शामिलात साझा प्रबध, लगान की साझी जिम्मेदारी, ऋणो का साझा उत्तर-दायित्व आदि उस समूचे ग्राम की सहकारी सभा की प्रधान विशेषताए थी। और यह क्रम था भी भारतीय परिस्थितियो के पूर्णतया अनुकूल। परन्तु इसका रूढिवादी सहकारी विभाग ने ध्यान न दिया और आज भी नही दिया जा रहा। हालाकि आचार्य विनोबा का भूमिदान और ग्रामदान इसी विचित्र कार्य-पद्धति की ओर सकेत है। शासन-निरपेक्षता का सिद्धान्त आर्थिक क्षेत्र मे सहकारिता

द्वारा और राजनीतिक क्षेत्र मे पचायतो द्वारा ही निष्पन्न हो सकता है।

कृषि क्षेत्र मे जहा ऋण-पक्ष को पुष्ट करने के लिए काम करना पडता है, और जिसके लिए सहकारिता के भाग का पूर्व-पृष्ठो मे वर्णन है, वहा इस क्षेत्र के और भी पक्ष हैं जिनमे सहकारिता ने सेवा की है। खेती की सक्षिप्त समस्याए इस प्रकार है —

क वहुत से किसान कृपि का कार्य तो करते है परन्तु उनकी अपनी भूमि नही होती।

ख. कुछ तो वडे-बडे जमीदार है और कइयो के पास भूमि के बहुत छोटे-छोटे टुकडे है।

ग भूमि आमतौर पर वटी तथा विखरी हुई होती है, जिसमे एकीकृत कृषि-कार्य नही हो सकता।

घ किसानो को अच्छे बीज प्राप्त करने की सुविधा नही है, आर्थिक निर्बलता के कारण वह छाटा हुआ हुआ उत्तम बीज रख नही सकते और वनिये या बडे जमीदार से वह जो बीज लेते है वह मिश्रित तथा घटिया होता है।

ड सुधरे हुए कृषि-उपकरण उन्हे आर्थिक असुविधा के कारण प्राप्त नही होते।

च पशुवश के विकास तथा दुग्धादि के विक्रय का समुचित प्रवध नही है।

छ भूमि के छोटे-छोटे टुकडे होने के कारण वह नई मशीने आदि प्रयोग मे नही ला सकते।

ज सिचाई मे कठिनाइया होती है, जो वह व्यक्तिगत रूप से हल नही कर पाते।

झ. कृषि की उपज के उन्हे अच्छे दाम नही मिलते क्योकि वह उन्हे अपनी मजबूरी के कारण दूकानदार को उसके भावो पर वेचनी पडती है और वह उसे अच्छे भाव की प्रतीक्षा मे जमा नही रख सकते।

ञ. अच्छे गोदाम या भण्डार न होने के कारण अन्न का बहुत नुकसान होता है।

ट रसायनिक खाद आदि का क्रय उनकी सामर्थ्य के वाहर होता है।

ठ. उन्हे कृषि के नए सुधरे हुए तथा वैज्ञानिक तरीको का परिचय नही होता आदि।

इन समस्याओ के हल करने के लिए आमतौर पर निम्न प्रकार की समितिया बनाई जाती है—

उन्नत कृषि सहकारी समिति—इस प्रकार की सहकारी समिति मे सदस्यो की भूमि पृथक-पृथक होती है। वह काश्त भी अलहदा-अलहदा करते है परन्तु वह आपस मे इस बात का समझौता करते है कि सहकारी समिति द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार कृषि-कार्य करेगे। समिति साझेतौर पर अच्छे बीज, खाद तथा सुधरे हुए कृषि-उपकरण प्राप्त करने का प्रबन्ध करती है। इसके साथ-साथ यह समिति सहायक व्यवसाय ग्रामोद्योगादि के लिए ऋण प्रदान कर सकती है। यह भूमि-सुधार वट-बन्दी तथा सिचाई आदि के कार्य भी कर सकती है। ऐसी सभा के उपनियमादि एक बहुद्देश्यीय सहकारी समिति जैसे होते हैं। आमतौर पर उत्तरदायित्व सीमित होता है। और शेष सब पूर्व अध्याय मे वर्णित समिति के ढग की ही होती है। उसी तरह तो यह समिति सदस्यो के लाभ हेतु ट्रैक्टर, वेलने आदि तथा भण्डारो का भी प्रबन्ध कर सकती है। परन्तु ऐसी समितिया साधारणतया बीज, खाद तथा छोटे उपकरणो का प्रबन्ध करती हैं। सिचाई के लिए बहुधा एक ही ध्येय वाली समितिया बनाली जाती है। भण्डारो का तो अब एक पृथक् विषय बन गया है। इसी तरह कृषको की उपज के विक्रय तथा उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति आदि का प्रबन्ध भी पृथक प्रकार की समितिया किया करती थी। अब बहुद्देश्यीय समितियो का प्रचलन हो रहा है। सिचाई के लिए भी कई बार कृषक इकट्ठे होकर कुआ आदि बनाने के लिए समिति बना लेते है। ऐसी समित्तियो मे सदस्यो का उत्तरदायित्व भाग-मूल्य से कुछ गुना रहता है। सदस्य योजना मे स्वय भी काम करते है। सरकार से भी सहायता मिल जाती है। समितिया सिचाई के साधन जुटाकर सिचाई शुल्क लगाकर शनै-शनै धन जुटाती है, जो ऋण लौटाने मे सहायक होता है। ऐसी समितियो की सफलता कम ही हो पाती है। यह समितिया भी उन्नत कृषि सहकारी समिति की श्रेणी मे पडती हैं।

संयुक्त कृषि सहकारी समिति—इस प्रकार की सहकारी समिति मे भूमि का स्वामित्व तो व्यक्तिगत सदस्यो का ही रहता है परन्तु कृषि के लिए समिति के सब सदस्यो की भूमि को एक इकाई मान लिया जाता है। इस तरह खेतो का कृषि के लिए एकीकरण हो जाता है। कृषि करने वालो को मजदूरी दी जाती

है। सारे सदस्यो की भूमि पर इस तरह सयुक्त प्रणाली से कार्य होता है। और अन्त मे भूमि-स्वामित्व के अनुपात से लाभाश का एक निश्चित भाग विभाजित होता है। जो उपज होती है उसका विक्रय भी सहकारी पद्धति के अनुसार साझेतौर पर किया जाता है और लाभाश का अधिक भाग श्रम के अनुसार उपनियमाधीन बाट लिया जाता है। इसमे सन्देह नही कि लाभाश अर्जित भूमि तथा श्रम के मूल्य के १०% से अधिक नही दिया जा सकता। शेष अन्य कोषो मे बाट दिया जाता है। सदस्यता इच्छानुसार होती है परन्तु योजना प्रबन्धक समिति बनाती है।

सहकारी काश्तकारी समिति—इस प्रकार की सहकारी समिति मे भूमि मूल्य अथवा ठेके पर प्राप्त की जाती है। उनको उचित टुकडो मे विभक्त करके वह टुकडे काश्त के लिए सदस्यो मे बाट दिए जाते है। प्रारम्भ मे यह वार्षिक लगान देते हैं परन्तु प्रबन्धक-समिति द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार कृषि-कार्य करना पडता है, जैसा कि उपरिलिखित प्रकार की सहकारी समिति मे। इस प्रकार की सहकारी समिति मे लाभाश का विभाजन सदस्यो द्वारा दिए जाने वाले लगान के अनुपात से होता है।

सामूहिक कृषि सहकारी समिति—इसमे सदस्यता ऐच्छिक होती है। प्रबन्धक कमेटी लोकतत्री सिद्धान्तो के अनुसार निर्वाचित होती है—और लाभाश सदस्यो के श्रम-मूल्य के अनुपात से बाटा जाता है।

इस शैली मे कृषि सामूहिक होती है और सारे कार्य भी सामूहिक होते है। इस प्रकार की समिति मे केवल भूमि ही सामूहिक स्वामित्व मे नहीं होती वरन् उत्पादन के साधन भी समिति के सामूहिक स्वामित्व मे होते है। सदस्य केवल श्रमिक रूप से कार्य करते हे। व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धान्त को पूर्णरूपेण हटा दिया गया है। रूस की सामूहिक कृषि और इस प्रणाली मे केवल इतना भेद है कि यहा नीति तथा योजना पर नियन्त्रण समिति का होता है और रूस मे सरकार का।

कृषि मे सहकारिता का उपयोग एक तो सरल और सीधा है दूसरा सहायक है। कृषि से सीधा सम्बन्ध रखने वाले कार्यो मे सहकारिता का किस प्रकार उपयोग हो सकता है? इस प्रश्न पर विचार उपरिलिखित पक्तियो मे किया गया है। भारत मे काफी प्रयत्न इस ओर किया गया है। बम्बई मे कैप्टन मोहाईट

१९४७ मे इस समस्या के अध्ययन के लिए नियुक्त हुए थे । उनकी सिफारिशो के अनुसार १९४९ मे ११२ सहकारी कृषि समितिया बनाने की योजना बनी । इन समितियो को निम्न सुविधाए देने का भी निश्चय हुआ—

(१) प्रशिक्षित कृषि-स्नातको द्वारा नि.शुल्क सलाह या परामर्श,

(२) एक वर्ष के लिए लगान की माफी,

(३) बीज, खाद तथा उपकरणो के लिए निम्न प्रकार से आर्थिक सहायता—

प्रथम वर्ष अधिकतम १५००) रु०
द्वितीय वर्ष " ७५०) रु०
तृतीय वर्ष अधिकतम ७५०) रु०

(४) भारी तथा मूल्यवान यत्र खरीदने के लिए दीर्घकालीन सस्ते दर पर ऋण, जो कि पिछडे हुए क्षेत्र मे भाग-धन के रूप मे प्रयुक्त हो,

(५) गोदान बनाने और पशुओ की हिफाजत के लिए भवन निर्माण तथा बजर भूमि को पुन· कृषि योग्य बनाने के लिए ऋण ।

इसलिए बम्बई के सहकारी अधिनियम मे भी सुधार करके यह कानून बनाया गया कि गाव के जब ६६% परिवार जिनके पास ७५% भूमि हो सहकारी कृषि करने को तैयार हो जाय, तो शेष को इसमे सम्मिलित होना अनिवार्य होगा । अन्य सुविधाए भी अधिनियम मे शामिल की गई । अब इसी आधार पर अन्य राज्यो ने भी अधिनियम सशोधित कर लिए है । सन् १९४९-५० मे बम्बई मे ७९ ऐसी समितिया बनी जिनके २६६८ सदस्य थे और जिनके पास ११९५० एकड भूमि थी। इनमे ३० सयुक्त कृषि और १९ काश्तकारी सहकारी समितिया तथा ३० सामूहिक कृषि समितिया थी ।

मद्रास मे छोटी-छोटी काश्तकारी सहकारी समितियो का चलन है जिनके पास ३ से ५ एकड तक भूमि होती है । यह सदस्यो की अन्य आवश्यकताए भी पूरी करती है । सरकार भी इन्हे यथासभव सहायता देती है । उत्तरप्रदेश मे गगा-खादर व नैनीताल मे नई भूमि पर सहकारी ढग से काम हुआ है ।

कृषि मे सहकारिता का विषय इतना विशद है कि यदि ससार मे इसके प्रचलन का सक्षिप्त चित्र भी देना हो तो एक स्वतन्त्र पुस्तक चाहिए । परन्तु आज तक इस दिशा मे जो कुछ हुआ है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सिद्धात रूप से सहकारिता और कृषि का अटूट सम्बन्ध होने पर भी यह स्पष्ट है कि अभी

तक इस क्षेत्र मे सहकारिता का पर्याप्त मात्रा मे प्रचलन नही हो सका। शेप देशो की समस्या मे न उलझते हुए हम यह कह सकते है कि भारत मे इस पद्धति की सफलता अभी नही के वरावर हे।

आम तौर पर इसका प्रधान कारण यह वताया जाता हे कि हमारा भूस्वामी भूमि के स्वामित्व का परित्याग करने को तयार नही। और इसकी सफलता के लिए सरकारी सहायता की अधिक आवश्यकता हे।

परन्तु इतना ही पर्याप्त नही। वस्तुत कारण यह है कि हम भारत की परम्परा को भूलकर विदेशो का अनुकरण करके इस पद्धति को चलाना चाहते है। भारत मे सहकारी कृषि का अनुपम प्रयोग गत शताब्दी के अन्त मे पजाव के होशियारपुर जिला के पजौर नामक ग्राम मे हुआ था। इसका वर्णन 'सहकारिता का उदय और विकास' मे किया गया हे। उस समय सहकारिता का कोई अधिनियम नही वना था। और अधिनियम वनने के वाद यह समिति उक्त सफलता से नही चल सकी। इस समिति की विशेपताए यह थी—

(१) ग्राम के सव भूस्वामी इसके सदस्य थे,
(२) उत्तरदायित्व असीमित था,
(३) समिति का लाभ लगान देने, कृषको का ऋण चुकाने, उनके मकान पक्का करने तथा कुए आदि वनाने मे लगता था।

अर्थात् जव तक सारा ग्राम एक इकाई नही समझा जाता तव तक ऐसी समितिया सफल नही हो सकती। जमीदारी-उन्मूलन कानून वनाने पर यदि व्यक्तिगत स्वामित्व को प्रधानता देने के स्थान पर ग्राम को प्रधानता दी जाती और होशियारपुर के भैयाचारी ग्रामो की तरह भूमि ग्राम को मिलती, तो हर ग्राम मे सहकारी कृषि का प्रचलन अधिक सुलभ तथा सफल होता। जव तक ग्राम की समस्त भूमि ग्राम की मल्कियत नही वनती तव तक वास्तविक सहकारी कृषि के कार्य का सफल होना दुष्कर ही दीखता है। आचार्य विनोवा भावे का भूदान-यज्ञ आन्दोलन इस कार्य को सफल वना सकता है। सहकारिता का सजीव स्वरूप ग्राम-राज्य की स्थापना से ही विकसित होगा। इस विषय पर अधिक विस्तार से अन्य स्थान पर लिखा गया हे, क्योकि सहकारी कृषि एक सगठित महकारी पद्धति के अधीन ही विकसित होकर पनप सकती हे।

सहकारी कृषि के प्रश्न पर आज देश मे एक ऐसा राजनीतिक ज्वार-भाटा

आ गया कि इसके सम्बन्ध मे कुछ अधिक लिखना आवश्यक हो गया है। इस हलचल से प्रभावित होकर इस विषय पर और प्रकाश डाला गया है ताकि श्रम पर आधारित सहकारी कृषि के विरोध का निराकरण हो सके।

सहकारिता तथा सहकारी खेती—काग्रेस के नागपुर अधिवेशन (१९५९) के सहकारी कृषि-सम्बन्धी प्रस्ताव तथा प्रधानमन्त्री के वक्तव्यो के फलस्वरूप सहकारिता तथा सहकारी खेती का प्रश्न एक प्रमुख विषय बन गया है। देश के कई एक नेताओ तथा विचारको ने इस पर विभिन्न मत प्रकट किये है। राजा जी ने तो यहा तक कह दिया कि भूमि पत्नी की तरह है। वह साझीदारी का विषय नही बनाई जा सकती। कुछेक अर्थ-शास्त्रियो का कहना है कि जब गत अर्ध शताब्दी मे सहकारिता सफलता का मुह नही देख सकी, तो कृषि मे इसका प्रयोग सभवत उत्पादन को कम कर देगा। कइयो ने इस ओर द्रुतगति से चलने मे सावधानी बरतने की मत्रणा दी है। हालाकि प्रस्ताव करने वालो तथा प्रधान-मन्त्री ने स्वय इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया है कि न वह कानून द्वारा उस पद्धति को परिचालित करना चाहते है और न उनकी इच्छा इस कार्य मे असावधानतापूर्ण शीघ्रता करने की है। इन बातो के होते हुए भी यह बवण्डर क्यो? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर धैर्य पूर्ण विचार करने की आवश्यकता है।

भारत मे सहकारिता की एक मौलिक परम्परा है और एक उसका वैधानिक स्वरूप है। दोनो मे कुछ भेद है। परम्परागत सहकारिता की सफलता तो इतिहास सिद्ध है जैसा कि सयुक्त परिवार प्रणाली, चिट-फण्ड, अन्न-भण्डार तथा भैयाचारी गावो के शताब्दियो तक सफल सचालन से प्रकट है। और वैधानिक सहकारिता की असफलता ग्राम-साख-सर्वेक्षण की रिपोर्ट से प्रकट है। इस सफलता तथा असफलता के क्या कारण है?

इसी प्रश्न के उत्तर मे सहकारिता के प्रश्न पर खडे विवाद का उत्तर निहित है परन्तु इस उत्तर पर विचार करने से पूर्व उक्त प्रस्ताव पर उत्पन्न विवाद का सक्षिप्त विश्लेषण लाभप्रद होगा। प्रस्ताव के आलोचको को निम्न श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) वह शासक तथा पूँजीवादी, जिनको सहकारी कृषि से अपने व्यक्तिगत हितो तथा स्वार्थों का हनन होता दीखता है।

(२) वह सत्ता चाहने वाले राजनीतिक नेता, जिनको यह भय होता है कि सह-कारी कृषि के प्रचार से वह उन सामन्तो तथा पूँजीवादियो की सहायता खो बैठेगे जिनके हाथो मे मत होते है।
(३) रूढिवादी सहकारी कार्यकर्ता, जो सहकारिता जैसी उदात्त विचार-पद्धति को कानून की चेरी समझते है।
(४) भावुकता सम्पन्न व्यक्ति।
(५) जिन को यह भय है कि सहकारिता के प्रयोग मे उत्पादन कम हो जायगा।

प्रथम श्रेणी के आलोचक छद्म रूप से दूसरो को आगे करके आलोचना करवाते है। उनके समाज-विरोधी स्वार्थो का हनन सहकारी कृषि से होना स्वाभाविक है। और वे है भी इतने होशियार कि कई वार तो समाजवादियो को भी अपने चगुल मे फसा लेते है। आज के युग मे उन प्रतिगामी शक्तियो के प्रभाव मे आकर कोई कदम उठाना समाज के लिए अहितकर ही नही वरन् भयानक है। उनको स्वय भी यह समझ लेना चाहिए कि यदि वह भवितव्यता को देखने का यत्न नही करेगे तो भूदान आन्दोलन से पूर्व की तेलगाना वाली परिस्थितिया उन्हे किसी वक्त भी घेर सकती है। समाज अब किसी प्रकार का शोषण सहन करने के लिए तैयार नही। यदि वह स्वय न्याय-परक परिवर्तन के लिए तैयार नही होगे तो प्रकृति उनको मजबूर करेगी। सहकारिता के विरुद्ध इस श्रेणी के षड्यन्त्र को भापना तथा रोकना सव अग्रगामी समाज-कल्याण-परक शक्तियो का कर्तव्य है। अब रुपये से रुपया कमाने की पद्धति के स्थान पर श्रम की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित करनी है। अत इस श्रेणी की आलोचना से तो सारे समाज को सतर्क रहना है।

दूसरी श्रेणी मे वह लोग आते है जिनमे आदर्शवाद का अभाव है। नेतृत्व और मत-प्राप्ति मे भेद यही है कि एक तो किसी आदर्शवाद के पथ पर जनता को चलाते है परन्तु दूसरे कई बार जनता की कमजोरियो तथा हीन भावनाओ को उभार कर मत प्राप्त करते है। यह लोग ऐसे एजेण्टो का मत-प्राप्ति हेतु पोषण करते है जिन्होने शोषण के पजो मे नि सहाय जनता को बाध रखा होता है। इस श्रेणी मे आने वाले लोग अपनी आदर्शहीनता को छिपाने के लिए बडी-बडी आकर्षक युक्तिया पेश करते है। परन्तु यह तो अवसरवादिता है जिससे देश

एक मत रूसो का है जिसने 'साशल काट्रैक्ट' मे लिखा है कि मनुष्यो का पारस्परिक व्यवहार एक सामाजिक सविदा है जिसमे एक व्यक्ति कुछ व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए अपने कतिपय अधिकारो का दूसरे के हित विसर्जन करता है अथवा अपनी व्यक्तिगत स्वतत्रता को सीमित करता है। यथा वासना की पूर्ति के लिए पुरुष स्त्री को कुछ अधिकार देता है। परन्तु भारत की परम्परा मे सहयोग सविदा नही। वह कोई साझीदारी नही वरच मानव-मानस के विकास मे एक अवश्यम्भावी सोपान है। ज्योही मानव यह समझना प्रारभ करता है कि सभी मानवो की मूल शक्ति जीव अथवा आत्मा एक ही है, तव इस एकता की भावना से ही प्रेम तथा स्नेह की सृष्टि होती है। स्नेह की भावना का यह एक स्वाभाविक गुण है कि एक व्यक्ति दूसरे के लिए बिना कुछ वदले मे प्राप्त किए त्याग करके सुख तथा प्रसन्नता अनुभव करता है। इसी भावना के अधीन ही इस आदान-प्रदान के क्रम से सहयोग की सृष्टि होती है। आचार्य विनोवा ने भी ऐसा ही विश्लेषण किया है। स्नेह की भावना से प्रभावित होकर तथा त्याग-पूर्ण इस आदान-प्रदानपरक सहयोग से ही अन्ततोगत्वा साम्ययोग की स्थिति आती है। इस विश्लेषण मे सहयोग व साम्ययोग मानव विकास की परिस्थितिया हैं न कि वादो द्वारा झगडो से लाई जाने वाली हालते। माता वच्चे से स्नेह करती है और आयु पर्यन्त वच्चे के लिए सस्नेह त्याग उसका परम प्रिय कार्य रहता है। इस मौलिक, मानव की एकता के भाव के विकसित होने से स्नेह के पावन भाव मे वीज वाली सहयोग की भावना की परम्परा हमारे देश मे आज से सदियो पहले जागृत हुई। हम व्यक्ति से कुटुम्ब, कुटुम्ब से परिवार तक पहुचे। हम आगे वढ रहे थे। कौटिल्य ने लिखा है कि भूमि ग्राम की होनी चाहिए। जो ठीक काश्त करे उसे काश्त-हेतु ग्राम के प्रवन्धक भूमि दे। जो ठीक काश्त न करे उससे ले ले। भूमि का क्रय-विक्रय पाप था। अत हमारा परिवार विस्तृत हो रहा था। और वह समय आने वाला था जब सारे ग्राम का प्रवन्ध एक सयुक्त परिवार की तरह होता। परन्तु यह विकास वाहरी आक्रमणो से रुक गया। यहा तो इतना ही लिखना पर्याप्त है कि भारत की सहकारी परम्परा पश्चिमी सहकारी परम्परा से भिन्न है। अत देखना यह है कि कौन-सी परम्परा सिद्धान्त की कसौटी पर खरी उतरती है।

पद्धति मे स्टेट कण्ट्रोल के कारण व्यापार जनता का तथा जनता के लिए तो होता है परन्तु जनता द्वारा नही। केवल सहकारिता ही लोकतन्त्र के सब सिद्धान्तो को अपनाती है। अत हम कह सकते है कि "सहयोग या सहकारिता एक ऐसी कार्य-पद्धति है जहा जनता का कार्य, जनता के लिए, जनता द्वारा होता है।"

यदि सहकारिता की उपरोक्त परिभाषा हम समझ ले तो लोकतन्त्री पद्धति मे विश्वास रखने वालो मे से कौन होगा जो यह कहे कि वह कार्य-पद्धति भ्रान्त अथवा अवाछनीय है ?

अब प्रश्न यह है कि सहकार का कार्य आज तक क्यो असफल रहा। एक स्पष्ट परिभाषा का अभाव, सहयोग की प्राचीन परम्परा का विरोध व समाप्ति, तथा विदेशी राज्य की ग्रामो को निर्बल रखने की नीति ही इसका कारण रहे हैं। सहकारिता सम्बन्धी अधिनियमो पर भी उक्त परिभाषा तथा परम्परा-विरोधी कारणो का प्रभाव अभी तक चला आ रहा है। अत यह सिद्ध ही है कि सहकारिता की भावना कानून, सस्ते ऋण अथवा आर्थिक सहायता देने से जागृत नही हो सकती। यह तो मानव स्वभाव के मानसिक विकास की एक दशा है। और यह विकास एक वास्तविक शिक्षा द्वारा ही सभव है। इसलिए आवश्यकता इस बात हो जाती है कि सहकारिता की व्याख्या और पूर्ण शिक्षा व प्रचार का प्रबन्ध हो। कानून के दबाव तथा धन के प्रलोभन से बनने वाली सहकारी समितिया तो केवल भ्रममात्र होगी और उनका असफल होना स्वाभाविक ही है।

अत सहकारी समितियो के आयोजन मे मनुष्यो के जागृत सहयोग की भावना को सक्रिय बनाना हमारा ध्येय होना चाहिए न कि किसी विशेष कार्य मे उक्त पद्धति का उपयोग। अर्थात् जिस-जिस आवश्यकता-पूर्ति के लिए एक मानव समूह सहयोग करने के लिए कामना करे, उन सब कार्यो का समावेश सघठन मे होना आवश्यक होगा। और वे कार्य है क्या, किस-किस क्षेत्र मे कौन-कौन से होगे, ग्रामो मे साधारणतया क्या काम होगे, इनको ढूंढने के लिए हमे ग्रामवासियो की ओर निहारना होगा। उनकी परम्पराए, उनकी आवश्यकताए, उनकी कामनाए देखनी होगी। यह कार्य वेतन भोगी कर्मचारियो से सभव नही। इसके लिए तो आदर्श सेवा-भावी प्रेरणा का होना आवश्यक है।

यह तो ठीक ही है कि सहकारी कृषि के प्रयोग की पूर्वावस्था होगी कृषक-

समितियो को इस्तेमाल कर लेना परन्तु उपनियमो को ऐसे बनाना कि हर नये काम के जारी करने पर वारवार उनके सशोधन की आवश्यकता न रहे ।

७ प्रथमावस्था मे कृपक-सेवी कार्य हर सहकारी समिति के कार्यक्रम मे समाविष्ट हो जाना चाहिए, जो ग्राम मे कार्य करती है और उनका समावेश आवश्यकतानुसार होना जरूरी है ।

८ सहकारिता को कृपि की ओर आकर्पित करने के लिए सरकार की ओर से यह प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि कृपि विभाग जितने बीजवर्धक, अथवा फलोत्पादक क्षेत्र चालू करता है, वह कृपि-विभाग की सलाह से सहकारी समितिया करे ।

९ हर सहकारी सभा को मूल केन्द्र के रूप मे एक कृपि-क्षेत्र (फार्म) रखना चाहिए जो प्रबन्धक समिति के नि शुल्क सामूहिक श्रम द्वारा चले ।

१० सहकारी समितियो को कम्पोस्ट-खाद बनाने का प्रबन्ध रखना चाहिए जो ग्रामीणो को सस्ती मिल सके ।

११ सहकारी समितियो के पास अन्न-भण्डार हो, जहा ग्रामीण उत्पादन जमा रख सके और उत्पादन के क्रय-विक्रय का प्रबन्ध हो ।

१२ हर सहकारी समिति "अनाज गोले" का प्रबन्ध करे जहा से ग्रामीणो को अनाज इस शर्त पर मिल सके कि वह अपनी फसल पैदा होने पर १$\frac{१}{८}$ लौटा देगे ।

१३ हर समिति के साथ एक सूचना केन्द्र हो, जो ग्रामीण कृषको को हर प्रकार की सूचना व सलाह दे सके ।

यह सूची सकेतात्मक है । ज्योही प्रारम्भिक सेवाओ से उत्साह, विश्वास तथा प्रेरणा प्राप्त होगी तभी दूसरी अवस्था मे प्रवेश का समय आयगा और दूसरी अवस्था मे उदाहरणरूपेण निम्न कार्य लेने उपयुक्त होगे—

१ व्यक्तिगत भूमिपतियो से काश्त के लिए भूमि लेकर उसमे वैज्ञानिक ढग से खेती करके अधिक उत्पादन करना ।

२ गामलात चरागाह, घार व नालो, जलाशयो, रास्तो आदि का सामूहिक प्रबन्ध सहकारी समिति द्वारा करना ।

३. हर सहकारी समिति मे उसकी परिस्थितियो के अनुसार ऐसे ग्रामोद्योग

चालू करना, जो कि कृषि से होने वाली आय को सहायता दे और काम ऐसे हो जिनके करने के लिए कृषि-व्यवसाय छोडना ही न पडे ।

४ सामूहिक पशुशालाओ, पशुवशोन्नति फार्मो, दुग्धशालाओ आदि का प्रबन्ध करना ।

५ ग्रामीणो को फलो के नए पौधे प्राप्त करने आदि के विभिन्न कार्यो मे सहायता देना ।

जब दूसरी अवस्था सफलता से पूरी हो जाय तो सामयिक तथा अन्य बेकारी को हटाने के लिए उद्योग चल निकलेगे । शनै शनै सारी ग्राम्य-भूमि की काश्तकार सहकारी समिति हो जायगी तभी सहकारी कृषि का क्रियात्मक रूप विकसित होगा ।

गोपालन

कृषि-कार्य मे सहायता देने के लिए एकोद्देश्यीय समितिया बीज प्राप्त करने, उपज विक्रय करने, आढत का प्रबन्ध करने के लिए भी बनाई जाती है । परन्तु कृषक का जीवन है गोवश, अत गोवश सम्बन्धी समितियो के बारे मे सक्षेप से कुछ लिखना उपयुक्त समझा गया है । किसान को कृषि के लिए बैल चाहिए और बैलो के उत्पादन के लिए गोपालन आवश्यक है । साथ ही गोवश से खाद की प्राप्ति होती है और दूध तथा तज्जनित पदार्थ प्राप्त होते है । परन्तु एक ओर तो कमजोर और छोटे-छोटे बैल काश्त मे पूरी सहायता नही दे सकते और इस प्रकार की गौए भी कम दूध देती है । साथ ही दुग्धादि के विक्रय का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण कृषक घाटे मे ही रहता है । ऐसी समितिया आमतौर पर नगरो मे शुद्ध तथा सस्ता दूध प्राप्त कराने के लिए बनाई जाती है । ग्रामो मे इनका प्रचलन कम है । नगर की दुग्ध-प्रापक सहकारी समितियां कृषि-कार्य मे सहायक केवल इतनी मात्रा मे ही हो सकती है कि या तो वह ग्रामीण कृपको से दूध लेकर उन्हे उचित दाम प्राप्त करवा सकती है, या वहा पैदा होने वाले बैल शक्तिशाली होते है और वह उचित दामो पर किसाना को मिल सकते है । इस प्रकार की एक या दो समितियो का सक्षिप्त विवरण पाठको के लिए मनोरजक तथा लाभप्रद होगा । यू तो दुग्धोत्पादन तथा दुग्धजनित पदार्थो के उत्पादन तथा विक्रय हेतु विश्व मे बडी-बडी सहकारी समितिया है और डेनमार्क जैसा छोटा-सा देश तो इनके लिए विश्वविख्यात है, परन्तु भारत मे इस दिशा मे सफल प्रयोग थोडे ही हुए है । आमतौर पर जनता को

विश्वास-सा हो गया है कि डेयरी का काम लाभप्रद होता ही नही। परन्तु जिन दो एक प्रयोगो का सक्षिप्त विवरण यहा दिया जा रहा है, वह इस बात के उदाहरण अवश्य है कि यह कार्य सफल तथा लाभप्रद हो सकता हे। विश्वविख्यात तथा एशिया का सबसे बडा प्रयोग इस दिशा मे जो हो रहा है वह है बम्बई की आरे मिल्क कालोनी। यह सहकारी ढग का प्रयोग नही वरन्‌ बम्बई नगरनिगम के अधीन चल रहा है। इस कार्य की पद्धति अवश्य ऐसी है जिसका नगरो मे सहकारी ढग पर सफलता से अनुकरण किया जा सकता है। कार्यपद्धति इस प्रकार की है कि कारपोरेशन ने अपनी आधुनिक ढग की गोशालाए तथा गोपालो के लिए निवासस्थान बनाए हे। गौए गोपालो की होती है। उनको उचित तथा निश्चित किराये पर स्थान दिए जाते है। कारपोरेशन गौओ के लिए चारा तथा दाना आदि भी मुहैय्या करता है। गौओ का दुग्धदोहन कारपोरेशन वैज्ञानिक ढग से करता है और सारा दूध निश्चित दरो पर खरीद लिया जाता है। वह मशीनो द्वारा कीटाणुमुक्त किया जाकर बोतलो मे बद किया जाता है और बम्बई नगर मे नागरिको को सुभीते के स्थान पर खुले डिपुओ मे बेचा जाता है। इस प्रकार सस्था की ओर से तो पशुवश उन्नति, सरक्षण, पालन, दुग्धोत्पादन तथा विक्रय आदि की सहायता मिलती है, परतु पशुवश पर स्वामित्व गोपालो का ही रहता है। इस तरह सस्था आकस्मिक घाटो से सुरक्षित रहती है। इस सस्था की सफल कार्यपद्धति की भूरि-भूरि प्रशसा विदेशियो ने भी की है। वहा सारा काम मशीनो द्वारा होता है। परन्तु इस पद्धति मे जो व्यक्तिगत स्वामित्व तथा सामाजिक सहयोग का अपूर्व समन्वय है वह सहकारिता की पद्धति के अनुकूल है। अत उसका कही भी अनुकरण किया जा सकता है। आरे मिल्क कालोनी के विस्तार का अनुमान (रोजाना ४२०० मन दूध), तो उसको देखने से ही लग सकता है। करोडो रुपया खर्च हुआ है। विचित्र भवन है। दुग्धशोधक मशीने, लाखो रुपयो का दूध लाखोबन्द बोतलो मे नित्यप्रति बम्बई के नागरिको को मिलता है। और वह भी उचित दरो पर। रूस के महामना श्री ख्रुश्चेव तथा बुलगानिन ने भी इसको जब देखा तो मुक्तकठ से प्रशसा की थी।

सहकारी ढग से सफल गोपालन का कार्य करने वाली अयना मिल्क मद्रास नाम की गोपालक सहकारी समिति है। यह समिति आरे मिल्क कालोनी की तरह नही है। आरे मिल्क कालोनी तो सरकारी तथा पूजीवादी सगठन है, जिसमे

४० दूध देने वाली भैसो से कम जिसके पास हो वह सप्लायर नही बन सकता, और बहुतो के पास तो ५०० तक पशु है जिसका अर्थ है ५०,०००) रु० से लेकर ५००,०००) रु० तक की पूजी ।

परतु उपरोक्त सहकारी समिति एक सघ है जिसका प्रारभ १३ सदस्य सहकारी समितियो से हुआ और पूजी थी केवल २४२) रु० । इस समय इसकी १५१ समितिया सदस्य है और भाग-धन, जोकि सघ को दिया जा चुका है, १,८६,१८७) रु० है । यह आज तक दुग्ध-उत्पादको की सस्था है तथा उन परिवारो की कृषि को छोड अन्य आय के साधन जुटाती है । कृषि प्रधान व्यवसाय के तौरपर तो चलती ही है । मद्रास राज्य सरकार ने इस सघ की पर्याप्त सहायता की है । और उसकी शक्ति तथा स्रोत के कारण सघ ४०,००,०००) रु० दूध देने वाले पशु खरीदने के लिए ऋण दे सका है ।

सघ की अपनी मिल्क-बार है, दूध बेचने के डिपू है, दुग्ध-शोधक यत्र है। मुर्गी पालन का धधा है। साड सस्ते दामो मे विक्रय करने का क्रम है । पशुओ के इलाज का प्रबन्ध हे । समिति के कार्य का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि अब यही समिति लाखो रुपये का कारोबार करती है ।

स्पष्ट है कि यदि सूझ-बूझ से योजनापूर्वक काम किया जाय तो गोपालन सम्बन्धी सहकारी समिति की सफलता हो सकती है और यह एक बहुत ही उपयोगी सहकारी सस्था कृषि व्यवसाय को सहायता देने वाली है ।

कृषि के क्षेत्र मे भण्डार, विक्रय तथा उद्योग का बडा घनिष्ट सम्बन्ध है । परन्तु इनका विवरण स्वतन्त्र अध्यायो मे किया जाना उचित होगा, क्यो कि वह कार्य पूर्ण-रूपेण कृषि-जनित नही, वह केवल सहायक है और सहायता के साथ-साथ उनका स्वतन्त्र अस्तित्व भी हे । इस अध्याय को इन शब्दो के साथ समाप्त किया जाना उचित है—

> "समस्त विश्व का जीवन-प्रदायक व्यवसाय कृषि है । कृषि को लाभप्रद तथा मानव-प्रिय बनाने के लिए उसका समाजीकरण आवश्यक है । कृषि का मानवीय समाजीकरण सहयोग अथवा सहकारिता द्वारा ही सभव है ।"

: ५ :

सहकारिता और उद्योग

यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उद्योग तो मानव के साथ ही पैदा हुआ। यदि उसने भोजन के लिए शिकार के व्यवसाय को अपनाया तो, पत्थर से ही सही, उसे हथियार बनाने पडे। इनके बनाने के साथ ही उद्योग की उत्पत्ति हुई। यदि उसने कृषि आरम्भ की तो हल-कुदाल बनाने का उद्योग उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत रहा। इस प्रकार जहा हर उत्पादन अथवा उदर-पूर्ति के कार्य के वास्ते उद्योग की आवश्यकता थी, वहा उद्योग का एक और स्वरूप शनै शनै विकसित हुआ। वह था उद्योग का स्वतन्त्र अस्तित्व। अर्थात् केवल उद्योग से ही जीविका के उपार्जन के साधन जुटाए जाने लगे। गाम-ग्राम मे बढई, मोची, कुम्हार, लुहार आदि ऐसे व्यक्ति हो गए जो केवल अपना औद्योगिक कार्य करते और इसके बदले मे उनको अन्न-वस्त्रादि प्राप्त हो जाता था। यह उद्योग किसान् तथा ग्रामीण को प्रिय था क्योकि यह अन्योन्याश्रित था। और उसका सीधा तथा तात्कालिक लाभ ग्रामीण किसान को दिखाई देता था। परन्तु समय आगे बढा। समाज ने परिवार से आगे बढकर कबीले तथा अन्त-तोगत्वा देश की रचना की। अपने देश पर न्योछावर होने की बावली भावना के वशीभूत होकर हमने मूलभूत मानवता के नाते को भूलना आरम्भ कर दिया। जो देश शक्तिशाली हो गए वह निर्बल देशो पर आधिपत्य जमाकर अपने देश के लाभ के लिए उनका शोषण करते रहे। यह शोषक नीति समस्त साम्राज्यवादी देशो का मूलमत्र रही। परन्तु इस शोषक नीति ने इन साम्राज्यवादी देशो के विरुद्ध एक द्वेष भावना को पैदा किया। जहा यह सब स्वदेश प्रेम की भावना के अधीन साम्राज्यवादी देशो ने किया—उसके साथ-साथ ही एक और कारण भी था। वह यह था कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप बडी मात्रा मे उत्पादन तथा बडी-बडी मशीनो के प्रयोग ने बहुत सा औद्योगिक उत्पादन कतिपय देशो मे केन्द्रीभूत कर दिया, और हाथ के उद्योग की उपयोगिता जाती रही। इस प्रकार उत्पादक देशो से कच्चा माल औद्योगिक

देशो को जाता और वहा से वस्तु निर्माण होकर पुन कच्चा माल पैदा करने वाले देशो मे विकता। इस बडे पैमाने पर मशीनो द्वारा औद्योगिक कार्य ने भूमि पर काम करने वाले किसान तथा ग्रामो मे काम करने वाले वढई व लुहार को मशीनो से काम के लिए आकर्षित किया। उन देशो मे भूमि पर काम करने वालो की सख्या मे कमी होने पर वहा भी मशीनो की आवश्यकता पडी जिससे ट्रैक्टर आदि के आविष्कार हुए। यह सब तो हुआ उन देशो मे जहा औद्योगिक क्रान्ति हुई, परन्तु कच्चा माल पैदा करने वाले देशो की हालत पतली होती गई। गाव मे होने वाले उद्योग यथा चरखा, करघा, गुड निर्माण आदि के कार्य दिन-प्रति-दिन समाप्त होने लगे।

ग्रामीण को मिल के कपडे, बूट-जूते व चीनी खाड आदि ने अपनी ओर खीचा। गाव का चमार, लुहार, वढई, धोवी, चितेरे आदि या तो गाव छोड भागे या उन्होने भी भूमि पर किसान की तरह कृषि-कार्य करना आरभ कर दिया। इस तरह एक तरफ तो भूमि पर भार बढ गया और दूसरी तरफ ग्राम के उद्योग-धधे समाप्त हो गए और किसान ग्रामीण व ग्रामीण स्त्रियो के अवकाश के समय का कोई धधा नही रह गया। वे कुटेव सीखने लगे और उनको आवश्यकताओ की प्राप्ति का अभाव भी खटकने लगा। उधर जो ग्रामीण कारखानो मे गए वे परिवार साथ न रख सके। विरादरी तथा गाव वालो के सास्कृतिक प्रभावो से वह दूर हो गए। उन्होने कई कुटेव व दुर्व्यसन वहा सीख लिए। इस प्रकार जहा तक ग्रामीण का सम्वन्ध है वह दोनो ओर से घाटे मे तथा प्रताडित रहा।

मशीनो के इस युग मे ग्रामो के लिए उद्योग तथा ग्रामीणो के खाली समय के लिए धधे जुटाने का कार्य दुरूह तथा दुष्कर हो गया। यह समस्या सारे विश्व मे थी परन्तु भारत के लिए विशेष-रूपेण भयकर सिद्ध हुई। यदि भारत ने जीना है तो उसके ग्राम पुष्ट होने चाहिए। ग्राम सजीव और पुष्ट तभी हो सकते हैं जब कि ग्रामो मे इतना व्यवसाय हो कि ग्रामीणो को ग्राम छोडकर जीविका-हेतु नगरो को न भागना पडे। केवल मात्र कृषि से यह सम्पादित होना सभव नही था। और ग्रामोद्योगो को, वह सरकार जो अपने देश की मिलो के लिए पर्याप्त मात्रा मे कच्चा माल चाहती थी, पनपने नही देती थी। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन साथ ही साथ ग्रामो के पुनरुद्धार का आन्दोलन भी वन गया। महात्मा

गाधी ने तो चर्खे और खादी को ही स्वतत्रता आन्दोलन का मूल-मन्त्र बना दिया। चर्खा और खादी ग्रामोद्योग के प्रतीक थे। महात्मा जी के स्वतत्रता आन्दोलन के साथ-साथ ग्रामोद्योगो के पुनरुत्थान का आन्दोलन चला, और आदरणीय श्री कुमारप्पा के अधीन ग्रामोद्योग मण्डल की स्थापना हुई। इस प्रकार जब ग्रामीणो की आर्थिक समस्याओ की ओर स्वतत्रता प्राप्ति के आन्दोलन का विशेष ध्यान गया तो विदेशी शासन ने प्रयत्न किया कि ग्रामीण उस आन्दोलन मे शामिल न हो, और स्वय ग्रामोद्योगो के प्रोत्साहन का ढोग रचा। परन्तु इस कार्य के लिए भी कोई ऐसा तत्र चाहिए था जिससे शासन पर व्यय का अधिक भार पडे बिना चल निकलना सभव नही था। और फिर विदेशी शासक यह कार्य ऐसे ढग से करना चाहते थे कि एक निश्चित षड्यत्र के अधीन वह असफल हो और उस असफलता का उत्तरदायित्व भी भारतीयो पर ही पडे। इसलिए उन्होने भी सहकारिता की पद्धति का आश्रय लिया। जिस प्रकार शेष क्षेत्रो मे सहकारिता का आश्रय व्यजना पूर्ण ध्येयो से लिया गया था इसी प्रकार यहा भी किया गया और आन्दोलन सफल न हो सका। इसमे सन्देह नही कि ग्रामोद्योगो की सफलता की एकमात्र पद्धति सहकारिता ही है। परन्तु जब तक सहकारिता देश की मौलिक परम्पराओ के अनुकूल नही होती तब तक इसका किसी भी क्षेत्र मे सफल होना संभव नही।

ग्रामोद्योग मे सहकारिता ही क्यो एकमात्र सफल साधन है ? एक सीधा-सा प्रश्न है और इसका उत्तर भी सरल है। ग्रामोद्योग की निम्न विशेषताएं है —

(क) यह गावो मे ही हो सकता है,
(ख) यह कृषि तथा घर के अन्य कार्य से अवकाश के समय किया जा सकता है;
(ग) हर परिवार के भिन्न-भिन्न कार्य हो सकते हैं,
(घ) उत्पादन के भिन्न अग भिन्न स्थानो या परिवारो मे होने के कारण उनके एकीकरण तथा निर्माण के लिए ऐसे सगठन की आवश्यकता है जो उत्पादको का प्रतिनिधि होकर उनके हित मे कार्य कर सके,
(ङ) उनके विक्रय का तथा कच्चे माल की उपलब्धि के लिए भी सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता होती है,
(च) समय परिवर्तन के साथ-साथ इन कामो मे उन्नत उपकरणो के प्रयोग तथा

उन्नत पद्धतियो के अनुसरण हेतु प्रशिक्षण का उचित तथा सामूहिक प्रबन्ध होना आवश्यक होता है।

उपरोक्त विशेषताओ से यह प्रकट है कि इस प्रकार के कार्यों के लिए ग्रामीणो के एक सगठन की जरूरत भी है। जब तक कोई ऐसा सगठन न हो तब तक न तो ग्रामोद्योग ग्रामीण के हित मे कार्य कर सकते है और न ही वह इस मशीन के युग मे एक नैतिक तथा आर्थिक सगठन के बिना जीवित ही रह सकता है। ग्रामोद्योग तथा सहकारिता का चोली-दामन का साथ है। और सहकारी पद्धति बिना ग्रामोद्योगो का जीवन तथा उनका पनपना असभव ही है। मूलत यह बात होने पर भी हमारा अनुभव यह है कि सहकारिता आज तक भी इस क्षेत्र मे सफल नही हो सकी। इसका कारण यह है कि सहकारी पद्धति बडी सकीर्ण तथा मानवता के मूल स्वभाव के अनुकूल नही बनाई गई। गाव के बढई, मोची, चितेरा, धोबी, नाई तथा कृषक अन्योन्याश्रित होते है। एक का निर्वाह दूसरे के बिना नही हो सकता। वहा पारस्परिक स्पर्धा के स्थान पर सहयोग होता है। वहाँ मेरे हित के लिए दूसरे के अहित का भाव मन मे नही आ सकता, क्योकि वहा दोनो का हित साझा है। परन्तु अन्य क्षेत्रो की तरह हमने ग्राम के भिन्न-भिन्न श्रेणी के औद्योगिक कार्य-कर्ताओ की पृथक्-पृथक् समितिया बनाने की योजना बनाई। इस योजना का सफल होना प्रत्यक्षत. असभव ही था, क्योकि हमने अन्योन्याश्रय के भाव के विपरीत एक कृत्रिम मुकाबले की भावना को जन्म देने का प्रयत्न किया। हमने एक और भूल की। वह यह थी कि व्यक्ति तथा समिति के क्षेत्रो की सीमा निर्धारित करके उनका सामजस्य नही किया। हमने सहकारी कार्य पद्धति को कम्पनी की तरह व्यापारिक सगठन बनाने की चेष्टा की। वस्तुत यह कार्य इस प्रकार होना चाहिए था कि एक ग्राम या ग्राम-समूह के लिए एक औद्योगिक सहकारी समिति होती। उसका काम व्यक्तिगत तौर पर काम करने वाले मोची, बढई, कुम्हार आदि सब को सदस्य बनाना होता। वे सब अपने-अपने काम मे उन्नति के लिए उचित सलाह और सहायता समिति से प्राप्त करते। जिस-जिस वस्तु की उनको आवश्यकता होती वह उन्हे समिति उचित मूल्य तथा सुविधा से प्राप्त करवाती। जो माल तैयार होता उसे विक्रय करने का प्रबन्ध समिति करती। जिस प्रकार हर ग्राम का प्रयत्न अन्न मे स्वावलम्बी तथा कुछ अधिक पैदा करना होता

चाहिए, उसी प्रकार इन ग्रामोद्योगो का ध्येय भी स्वावलम्बन होना चाहिए। जो सदस्य इन उद्योगो को नए तरीको से करना चाहते हो उन्हे नई-नई तथा छोटी-छोटी मशीने तथा अन्य उपकरण प्राप्त करने की सुविधाए जुटानी चाहिए। मशीनो को मगवाना, उनका मूल्य उचित किस्तो मे प्राप्त करना आदि-आदि इस किस्म की सुविधाए हो सकती है। यदि हम ग्रामो मे समितिया बनाकर सारा काम उन्ही द्वारा ही करे और उनमे पूरे दिन के वैतनिक कर्मचारी रखे तो ग्रामोद्योगो का वास्तविक ध्येय ही नष्ट हो जाता है। क्योंकि तब वह अवकाश का व्यवसाय नही रह जाता। ग्रामोद्योग इसलिए नही पनपा जहा पर उपरोक्त पद्धति को अपनाया गया—यथा स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क आदि। भारत मे इसकी असफलता मे यही मूल कारण था।

कल्पना कीजिए कि हम एक ग्राम मे घडिया बनाने का काम सहकारी ढग पर करना चाहते है। और घडियो के विभिन्न पुर्जे बनाने की विभिन्न मशीने है तो हम एक क्षेत्र के कुछ परिवारो की सहकारी समितिया बनाएगे। हर परिवार को एक-एक प्रकार की मशीन के कार्य मे प्रशिक्षण देकर पुर्जे बनाने का काम सौप देगे। समिति उन्हे मशीने खरीद करने मे आर्थिक तथा प्रशिक्षणात्मक सहायता देगी। समिति अपना एक केन्द्रीय वर्कशाप बनायेगी जहा पर विभिन्न साइज के पुर्जो को खरीदकर घडिया जोडी जायगी और फिर विक्री होगी। घडियो के विक्रय से जो लाभ होगा वह पुन सदस्यो मे वितरित होगा। सदस्यो को दिया गया ऋण सुरक्षित रखने के लिए उनकी मशीने बन्धक रखी जा सकती हैं। इसमे सदेह नही कि हर सदस्य परिवार को सहकारी समिति का भाग खरीदना पडेगा, परन्तु ऐसा किये बिना समिति चलेगी नही। ग्रामोद्योग की एक और विशेषता है कि उसका मूल्याकन कार्य मे समय लगने से नही, वरन् अवकाश की उपयोगिता से आका जाता है।

यदि हम ग्रामोद्योग मे भी श्रम के घटो का हिसाब लगाकर शहरी दर से उजरत निकाले तो कोई ग्रामोद्योग नही चल सकता। यहा तो कुछ कार्य बन मे पशु चराते समय हो सकते हे। रात को गप्पे हाकने के साथ ग्रामीण कात सकते है, बुन सकते हे। सैकडो ऐसे कार्य है जो ग्राम के प्रधान व्यवसाय के साथ-साय चल सकते है। लुहार, बढई आदि के प्रधान व्यवसाय के साथ अन्य कार्य वह भी कर सकते है। अत वहा मूल्याकन की शैली पृथक् होगी। इस

तरह ग्राम के लोगो की सहकारी समिति जब बन जायगी तो प्रश्न यह रह जायगा कि किसानो का इनके साथ जो मौलिक सम्बन्ध होता है उसको कायम रखने के लिए ग्राम की ऋण सम्बन्धी तथा बहुद्देश्यीय सभा से तालमेल कैसे रखा जाय। इसका विश्लेषण किसी अन्य अध्याय मे मिलेगा। परन्तु यहा पर इतना लिख देना पर्याप्त होगा कि ग्रामोद्योगो का पुनरुत्थान सहकारी ढग के बिना नही हो सकता। और सहकारी पद्धति इस कार्य मे तब तक भारत मे पनप नही सकती जब तक कि वह इस देश की मौलिक परम्परा तथा मानव के मौलिक स्वभाव के अनुकूल नही होती। कहना नही होगा कि इस समय भारत मे जिस प्रकार की औद्योगिक समितियो का प्रचार है वह तो परतन्त्रता के समय की गलत पद्धति के अनुसार ही है और शनै -शनै वे क्षीण होकर समाप्त होती जा रही है।

मद्रास मे प्रचलित औद्योगिक सहकारिता सबसे अधिक सफल है। मद्रास मे अम्मापेट स्थान की बुनकरो की सहकारी समिति ने उत्साहजनक तथा अनुकरणीय सफलता के लिए ख्याति प्राप्त की है। कहना नही होगा कि यह सभा तथा अन्य, जो सफल औद्योगिक सहकरी समितिया है, उन्होने उपरिलिखित पक्तियो मे वर्णित पद्धति का अनुसरण किया है। और जो ग्राम्य जीवन की मौलिक एकता को भूलकर तथा ज्वाइट स्टाक कम्पनियो का अनुसरण करके बनाई जाती है, वह सफलता का मुह नही देख सकी।

मद्रास की औद्योगिक सहकारी समिति का सक्षिप्त विवरण पाठको के लिए लाभप्रद होगा।

यह समिति इस समय मद्रास की बडी समितियो मे से एक है। यह २४ सितम्बर १९३८ को रजिस्टर्ड हुई। उस समय ५३ सदस्य तथा ११०७ रु० भाग-धन था। ३० जून १९५६ को इसकी सदस्य सख्या १५७३ हो गई और भाग-धन १,९७,६७५ रु० हो गया। सब सदस्यो के अपने-अपने करघे है। केवल २० सदस्य बिना करघे वाले है। यह समिति सफेद तथा रगदार, हर किस्म के कपडे बनाती है। लेसदार धोतियो तथा अन्य वस्त्रो नतो काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। समिति सारे वर्ष एक-सी मजदूरी देती है। १—७—५५ से ३०—६—५६ तक समिति ने ६, ४६,०५-½ गज कपडा १६,८०,६७४।।) रु० का पैदा किया और ६,१५,४४५—) रु० मजदूरी दी। बुनकरो की मासिक आय

औसतन ५०) रु० रही। समिति ने रगने के लिए भी अपना प्रवन्ध रखा हुआ है। समिति ने एक और फण्ड जारी किया है जिससे वुनकरो के लिए अच्छे मकानो का निर्माण किया जा रहा है। भूमि प्राप्त करली गई है और योजना भी स्वीकार हो चुकी है। सरकार से ६०,००० रु० ऋण मिलने पर ५० मकानो के निर्माण का कार्य आरम्भ हो जायगा। पुस्तकालय आदि की भी सुविधाए दी जा रही है तथा वुनकर सदस्यो को वच्चा पैदा होने पर १०) की सहायता दी जाती है।

उपरोक्त विवरण से प्रकट है कि सहकारिता की सफलता इस क्षेत्र मे हो सकती है और इसी पद्धति के अपनाने से छोटे-छोटे उद्योग पनप सकते है।

वडे पैमाने के उद्योगो मे सहकारिता के कतिपय प्रयोग भारत मे हुए हैं। पजाव ने कुछेक खाड के कारखाने लगाए है। उत्तरप्रदेश ने भी प्रयोग किए हैं। वम्वई मे रुई का कार्य होता है। परन्तु वडे पैमाने के उद्योगो मे सहकारिता के प्रयोग से पूर्व हमे यह विचार करना चाहिए कि हम सम्वन्धित कार्य केवल आयकर आदि से वचने के लिए ही तो नही कर रहे ? वडे-वडे कारखाने यदि सहकारिता के आधार पर चलाने ही हो तो हमे सहकारिता के मौलिक भावो को भूलकर उसे दभ वनाने से हमेशा वचे रहना चाहिए। वडा कारखाना चलाने के लिए धन चाहिए। वुद्धि तथा तजरुवा चाहिए और श्रम चाहिए। यह हर जगह दरकार होते है। ग्रामोद्योग मे भी इनकी आवश्यकता होती है। परन्तु स्पर्धा से परिपूर्ण आज के युग मे वडे-वडे कार्यो मे पूजी तथा कार्य-कुशलता का मूल्य तथा आवश्यकता वढ गई है। सहकारी कारखाने मे यदि हम पूजी वालो से ही पूजी जमा करे, तो वह एक पूजीवादी सस्था वन जायगी। अत वडे-वडे कार्य इस पद्धति द्वारा करने पर इन वातो का विशेप ध्यान रखा जाना चाहिए कि—

(१) कारखाने के लिए धन विशेषत सहकारी सस्थाओ से ही जुटाया जाय।
(२) व्यक्तिगत सदस्य भी अवश्य लिए जाय।
(३) प्रवन्धक-समिति मे प्रतिनिधित्व यो निर्धारित किया जाय कि सहकारी सस्था सदस्यो से ६०%, पूजी लगाने वालो से २०%, श्रमिको से २०% सदस्य हो।
(४) व्यवसाय सम्वन्धी कार्यकुशलता लाने के लिए मैनेजर आदि कुशल व्यक्ति

वैतनिक कर्मचारी रखने होगे।

(५) लाभाश मे से कारखाने मे काम करने वाले श्रमिको को बोनस देना अथवा उनके लिए सुविधाए जुटानी चाहिए।

(६) योजना ऐसी होनी चाहिए कि १० वर्ष मे कारखाने को ऋण लेने की आवश्यकता न रहे और कार्य-सचालन के लिए हिस्सो का धन तथा सुरक्षित कोष ही पर्याप्त हो।

सहकारी पद्धति पर आधारित वडे पैमाने पर उद्योगो की एक और सफल श्रेणी हो सकती हे। वह ऐसे कार्य हो सकते है जिनको विभिन्न अगो मे विभक्त किया जा सकता हो। एक-एक अग एक स्वतत्र सहकारी समिति द्वारा सचालित हो और इन अगो का काम करने वाली सहकारी समितिया मिलकर अपनी एक केन्द्रीय समिति बना ले, जो केन्द्रीय कार्य उन सब सहकारी समितियो के लिए उन अगरूप कार्यो को सगठित करे तथा हर सदस्य सहकारी समिति को मत्रणा तथा सहायता दे। इस पद्धति मे सहकारिता के भावो का अधिक समावेश रहता है।

मानवता के मूलभूत स्वभावो पर अवलम्बित यह आन्दोलन मानव के साथ हर स्थान तथा हर स्थल पर सफलता से चलता है। और यह तभी असफल हो जाता है जव हम इसके वुनियादी स्वभाव से विचलित होकर, सहयोग की मूल भावना को भूलकर तथा व्यक्तिगत अथवा अन्य विधियो द्वारा अधिक धन कमाने की लालसा से आकर्षित होकर उनके तरीको का सहकारिता मे अनुसरण प्रारभ कर देते है।

: ६ :

सहकारी-भण्डार

'भण्डार' और 'स्टोर' शव्द से कई वार भ्रम हो जाता है क्योकि यह अग्रेजी के दो शव्दो के पर्यायवाची है। यह दो शव्द है 'स्टोर' तथा 'वेयरहाउस'। सह-

कारिता मे 'स्टोर' आमतौर पर उपभोक्ता सामग्री बेचने वाले स्थान के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। और जहा कोई वस्तु जमा रखी जाती हो उसे वेयर-हाउस कहते है। जहा तक विक्रय-भण्डारो का सम्बन्ध है, उनका विवरण 'सहकारी व्यापार' के अध्याय मे मिलेगा। इस अध्याय मे भण्डार शब्द से उस प्रकार के भण्डारो से आशय है जिन्हे अगरेजी मे वेयरहाउस कहा जाता है।

इस प्रकार के गोदामो अथवा भण्डारो का चलन व्यापारी क्षेत्र मे तो है ही। या तो यह बाहर से आने वाली वस्तुओ को क्रेता के प्राप्त करने तक बैंको आदि द्वारा जमा रखने के लिए इस्तेमाल होते है, या व्यापारी अनाज आदि को इनमे इसलिए जमा रखते है कि भाव चढने पर वे उसे बेच सके। पहले प्रकार का उपयोग तो ऐसा है जो व्यापार मे आवश्यक और मानवीय है। इस क्षेत्र मे तो सहकारिता का प्रवेश शनै-शनै होगा जब कि व्यापारी यह समझना शुरू कर देगा कि उसे भी अपने कार्य मे सहकारी पद्धति को अपनाना चाहिए। परन्तु दूसरे प्रकार के गोदाम तो अन्नोत्पादक के लिए घातक है। क्योकि आम दूकान-दार यो ही फसल पैदा होने पर अनाज खरीद लेता है और उसे जमा रखता है। फिर जब कुछ समय बीत जाता है तो उसी अनाज को महगा करके उसी किसान को बेच देता है। और केवल अनाज को जमा रखकर किसान से अनुचित लाभ उठाता है। किसान इसलिए विवश होता है कि उसके पास अनाज को जमा करने की सामर्थ्य नही होती। परन्तु जब यही कार्य मण्डियो मे बडे-बडे आढती करते है तो सारे देश पर आपत्ति आ जाती है और एक करोडपति आढती जनता के जीवन से खिलवाड कर सकता है। अनाज के भाव घटाना-बढाना उसके वश मे आ जाता है। शासन ने अन्न पर अकुश लगा कर इसका प्रबन्ध किया परन्तु अकुश से भ्रष्टाचार बढा और उपरोक्त शक्ति या वृत्ति का उचित विकेन्द्रीकरण न हो सका और किसान की शक्ति नही बढी। इसका यदि कोई सफल इलाज है तो सहकारी भण्डारो का आयोजन। ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण रिपोर्ट मे सरकार का ध्यान भी इस समस्या की तरफ खीचा। उस रिपोर्ट मे एक अखिल भारतीय सहकारी भण्डारो की योजना की सिफारिश की गई। रिपोर्ट मे सुझाया गया कि एक राष्ट्रीय भण्डार विकास-कोष की स्थापना की जाय। इसके नियत्रण के लिए एक परिषद् की स्थापना का भी सुझाव दिया। इसकी सदस्यता के लिए कहा गया था कि कृषि-मन्त्री (प्रधान)

और कृषि-सचिव (उप-प्रधान) हो। तथा वित्त मन्त्रालय, विकास मण्डल, रेलवे बोर्ड, कन्सलटिंग इजीनियर, चेयरमेन फार्वड मार्केट कमीशन, रिजर्व बैंक का प्रतिनिधि, स्टेट बैंक का प्रतिनिधि, एक अर्थशास्त्री, दो सहयोगी, दो गैर-सरकारी व्यक्ति इसके सदस्य हो।

यह भी सिफारिश की गई है कि सहयोगी तथा अर्थशास्त्री विशेष योग्यता-सम्पन्न तथा प्रसिद्ध होने चाहिए। बोर्ड की एक स्थायी कमेटी होनी चाहिए जो साल मे काफी बार बैठक करके नीति आदि का निर्धारण करती रहे। उक्त कमेटी के कार्यो के सम्बन्ध मे सिफारिशे इस प्रकार है —

१. (क) सारे देश मे कृषि-सम्बन्धी उपज तथा ग्रामीणो के लिए आवश्यक वस्तुओ के सहकारी निर्माण तथा व्यापार के योजना-सम्पन्न विकास को उन्नत करना।

(ख) कृषि-उपज को सहकारी ढग के अनुसार योजनापूर्ण पद्धति पर विकसित करना तथा कृषि-उपज के कार्य मे छोटे-छोटे सिचाई-साधनो को प्रोत्साहन तथा दुग्ध एव गोपालन आदि के सहायक कार्यो को सहायता देना।

२ (क) कृषि-उपज तथा तत्सम्बन्धी वस्तुओ के एकत्रीकरण तथा जमा करने के लिए अखिल देशीय स्तर पर एक योजना के अनुसार भण्डारो की सुविधाओ का प्रबन्ध करना तथा सस्थाओ द्वारा एतदर्थ प्रबन्ध करके गोदामो तथा लाइसेस प्राप्त भण्डारो एव सहकारी समितियो के स्वामित्व का जाल बिछाना।

(ख) सहकारी ढग से सुविधाओ के साथ-साथ कृषको के लिए बीज, खाद, रासायनिक खाद, कृषि उपकरणो, औजारो, ग्रामोद्योगो आदि का प्रबन्ध करना, जिनकी कि कृषक को आवश्यकता होती है तथा अन्य आवश्यकताओ यथा मिट्टी का तेल, खाण्ड, दियासलाई आदि की सप्लाई का प्रबन्ध करना।

३. उपरोक्त ध्येयो की पूर्ति के लिए जहा तक कि उनकी पूर्ति राज्य-शासनो तथा सहकारी सस्थाओ के कार्य-क्षेत्र मे पडती है, राज्य-सरकारो को तथा उनके द्वारा सहकारी सस्थाओ को यथा-सम्भव मात्रा मे आर्थिक सहायता का प्रबन्ध करना तथा इन्ही ध्येयो की पूर्ति के लिए अन्य सहायता का

प्रबन्ध करना ।

४ अखिल भारतीय भण्डार-निगम का निर्देशन करना तथा उक्त निगम तथा राजकीय-भण्डार कम्पनियो द्वारा दिये जाने वाले ऋण तथा अन्य सहायता के प्रतिबन्धो का निर्धारण करना ।

५ राष्ट्रीय भण्डार, विकास-निधि तथा राष्ट्रीय सहकारिता विकास-निधि का प्रशासन, और इन दोनो निधियो का आवश्यकतानुसार पारस्परिक सतुलन तथा वितरण करना ।

परिषद् के कार्यालय के लिए प्रशासन सम्बन्धी विशेपज्ञ, कार्यवाहक तथा अन्य प्रकार के कर्मचारी समुदाय के प्रबन्ध के लिए कृपि मन्त्रालय पर उत्तर-दायित्व डालने की सिफारिश की गई है। और यह भी सिफारिश की गई है कि इस कार्य मे समिति राज्य-सरकारो से मन्त्रणा आदि द्वारा पर्याप्त ताल-मेल रखे ।

इस कार्य के लिए धन जुटाने के लिए दो निधियो के निर्माण करने की सिफा-रिश की गई है—जिनके नाम होगे राष्ट्रीय सहकारिता-विकास-निधि तथा राष्ट्रीय भण्डार विकास-निधि । भारत सरकार प्रारम्भ मे ५ करोड रुपया देगी जो राष्ट्रीय भडार विकास-निधि मे जायगा और इसके वाद हर वर्ष भारत सरकार कम से कम ५ करोड रुपया डालेगी जिसमे से ३ करोड राष्ट्रीय सहकारिता विकास-निधि मे जायगा और २ करोड राष्ट्रीय भण्डार विकास-निधि मे जायगा । इनके लिए अन्य साधन भारत सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य राशिया होगी तथा विदेशी सहायता भी शामिल होगी । इन निधियो के उपयोग के लिए निम्न उद्देश्य प्रस्तुत किए गए हे —

राष्ट्रीय सहकारिता-विकास-निधि—

(क) राज्य-सरकारो को दीर्घकालीन ऋण बिना प्रतिबन्धो के इसलिए देना कि वह सहकारी सस्थाओ मे भाग-धन दे सके ।

(ख) निधि के उद्देश्यो के अधीन तथा परिषद् द्वारा निर्धारित प्रतिबन्धो के अधीन राज्य-सरकारो द्वारा सहकारी समितियो को एक वार अथवा बार-बार दी जाने वाली आर्थिक सहायता देना ।

उपरोक्त आर्थिक सहायता के लिए यह प्रस्ताव किया गया है कि यह सहा-

यता कुल खर्च का एक निश्चित भाग होना चाहिए जो साधारणतया २५% से कम न हो।

राष्ट्रीय भण्डार-विकास-निधि—

(क) अखिल भारतीय भण्डार निगम के हिस्से खरीदने के लिए,

(ख) परिषद् द्वारा निर्धारित प्रतिबन्धों के अधीन राज्य-सरकारों को इसलिए ऋण देना कि वह राजकीय भण्डार कम्पनियों के हिस्से खरीद सकें।

(ग) परिषद् द्वारा निर्धारित प्रतिबन्धों के अधीन अखिल भारतीय भण्डार निगम को तथा उसके द्वारा राजकीय भण्डार कम्पनियों को, तथा राज्य-सरकारों द्वारा सहकारी समितियों को ऋण देने के लिए।

(घ) एक बार अथवा बार-बार दी जाने वाली आर्थिक सहायता देने के लिए जो उपरिलिखित स्रोतों द्वारा दी जायगी।

आगे चलकर आयोग ने अखिल भारतीय भण्डार निगम तथा राजकीय भण्डार कम्पनियों के निर्माण के लिए कुछ प्रस्ताव दिए हैं कि उनका भाग-धन कैसे बनेगा तथा उसके निर्देशन-मण्डल के कौन-कौन सदस्य होंगे। इसमें सहकारी प्रतिनिधियों को छोड़ (स्टेट बैंक) भारत राजकीय बैंक, कम्पनियों, बीमा कम्पनियों आदि के प्रतिनिधि भी रखे गए हैं।

उपरिलिखित भण्डार निगम के कार्यों के सम्बन्ध में उनके सुझाव यह है कि परिषद् की योजना के अधीन भूमि प्राप्त करके अखिल भारतीय महत्व के स्थानों पर गोदाम बनवाना, लाइसेंसों के अधीन भण्डारों का प्रबन्ध करना, मण्डियों का नियन्त्रण, सरकारी भण्डार कम्पनियों के हिस्से खरीदना, परिषद् के एजेण्ट के रूप में काम करना आदि-आदि। सरकारी कम्पनियों के कार्य तथा कर्तव्य भी इसी प्रकार के उनके अपने क्षेत्र में प्रस्तावित हैं। इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि भण्डारों का प्रबन्ध सहकारी समितियों द्वारा हो। राजकीय कम्पनियों के गोदाम तो जिला तथा तहसीलों तक हों और इनमें आगे सहकारी समितियों के हों। उनके लिए कर्मचारी समुदाय के प्रशिक्षण पर भी बहुत जोर दिया है।

उपरिलिखित परिषद् तथा निधियों का निर्माण हो चुका है। हर राज्य ने भण्डार निर्माण योजनाएं बना ली हैं। राज्यों ने भण्डार कम्पनियां भी बनाई हैं परन्तु जो प्रशिक्षण कर्मचारी समुदाय को दिया जा रहा है वह सिद्धान्तों

तक ही है क्रियात्मक नही। सहकारी समितियो मे व्यापारिक क्षमता की कमी है। नियमादि की कागजी कार्रवाई कार्य की गति व उसके विस्तार मे अडचन आदि बाधा के रूप मे खडी हो जाती है। यह कार्य एक उत्तरदायित्व को निभाने की मूल भावना से उत्पन्न तथा व्यवहार-कुशलता से पुष्ट होकर ही सफल हो सकते है। इसके लिए पहली आवश्यकता है उन भावो के जगाने की जिनकी ओर प्रथम अध्याय मे सकेत किया गया है। नियमादि मे इतनी स्वतन्त्रता तथा छूट चाहिए कि स्थान, परिस्थिति तथा आवश्यकतानुसार उनमे परिवर्तन किया जा सके।

परन्तु सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि भण्डारो का सचालन ऐसी सुचारुता से हो कि वह घाटे मे न चले। क्योकि कोई भी इस प्रकार की सस्था पर्याप्तकाल तक नही चल सकती, जब तक कि उसका आर्थिक पक्ष पुष्ट और स्वावलम्वी न हो। भारत की सहकारिता का जो अनुभव इस वक्त तक हुआ है उससे तो हमे यह स्वीकार करना पडता है कि अभी तक सहकारी कार्यकर्ताओ मे पर्याप्त व्यावहारिक योग्यता नही आई। और साधारण वणिक के मुकावले मे सहकारी सस्थाए सफल नही हो पाई। इसके कारण सक्षेप से इस प्रकार है—

(क) भारत मे शताब्दियो की पराधीनता ने सामाजिक भावो को शिथिल करके व्यक्ति को ज्यादा महत्व दिया है।

(ख) हमारे राष्ट्रीय भाव शिथिल होने के कारण हम अपने व्यक्तिगत लाभ को राष्ट्रीय लाभ से अधिक महत्व और प्राथमिकता देते है।

(ग) लोकतत्रीय भावनाए निर्बल होने के कारण हम मे सामूहिक उत्तरदायित्व के भाव जागृत नही हो सके।

(घ) सहकारी समिति के सम्वन्ध मे हमारी धारणाए अस्पष्ट तथा स्वप्निल है और यह समझते है कि सहकारी समिति अपने वैतनिक कर्मचारियो के वेतन निकालने के लिए भी लाभ न कमाए।

(ड) वणिक-वर्ग के सपर्क इतने विस्तृत है कि वह सहकारी समितियो के विरुद्ध झूठा प्रचार भी सफलतापूर्वक कर सकते है।

(च) कतिपय वणिकवृत्ति वाले व्यक्ति सहकारी समितियो मे प्रवेश करके उनका दुरुपयोग करते है।

(छ) सहकारी कार्यकर्ताओ तथा कर्मचारी वर्ग मे न तो सहकारिता मे पक्का विश्वास रखने वाले व्यक्ति है और न ही उनका पर्याप्त प्रशिक्षण हो सका है।

(ज) प्रशिक्षण के लिए अभी तक उपयुक्त प्रबन्ध नही हो सका।

(झ) सहकारी समितियो के सदस्य भी उपयोग मे सहकारी समितियो को प्राथमिकता नही देते।

(ञ) सरकारी सहायता भी स्वावलम्बन की भावनाओ को पुष्ट करने के स्थान पर उन्हे पगु बनाने मे सहायक होती है।

इन परिस्थितियो के होते हुए तथा हर भण्डार पर होने वाले खर्च के समक्ष इस योजना की सफलता मे काफी कठिनाइया नजर आती है। अत प्रारम्भिक दशा मे यह अधिक लाभदायक होगा कि हम इस प्रकार कार्यारभ करे कि उपरोक्त परिस्थितिया हमारे कार्य मे बाधक भी न हो तथा समाज के समस्त व्यक्ति सहकार्य की भावनाओ को अपनाते चले जाय और एक निश्चित योजना के अधीन तथा निर्धारित अवधि के अन्दर पूर्णतया सहकारी पद्धति पर भण्डार योजना चल सके।

यहा तक तो ठीक ही है कि सब भण्डार ग्राम-स्तर पर सहकारी समितियो के स्वामित्व मे हो और उनके निर्माण के लिए जो दीर्घकालीन ऋण मिले वह भी सहकारी समितियो को ही, परन्तु उनका दिन-प्रतिदिन का प्रबन्ध वैतनिक कर्मचारियो को यदि सौपा गया तो इस कार्य का जीवन लम्बा नही हो पायगा, क्योकि कार्य को इतनी व्यवहार-कुशलता से नही किया जा सकता जिसका कारण ऊपर बतलाया जा चुका है। हमारे वैतनिक कर्मचारी समय बिताना चाहते है कार्य करना नही। और वेतन मे समय का मूल्य समझा जाता है काम का नही। अत कार्य मे कुशलता लाने के लिए काम के लिए वेतन देने की पद्धति को अपनाना पडेगा। इसलिए भण्डार हर क्षेत्र मे एक ऐसे मैनेजर के अधीन देने पडेगे जो,

(क) स्थानीय सहकारी समिति का सदस्य हो, जिसके प्रबन्ध मे वह भण्डार हो।

(ख) सदस्य एक निश्चित राशि तक अपनी जमानत दे ताकि रखे जाने वाले माल की हिफाजत रहे।

(ग) उक्त सदस्य को, जितना सामान रहे, उसके हिसाब से तथा उनके आयात-

निर्यात के अनुपात से उसको पारिश्रमिक दिया जाय। यह पारिश्रमिक उस कमीशन या शुल्क का एक निश्चित भाग होना चाहिए, जो कि उसी कार्य पर सहकारी समिति ले।

(घ) भण्डार का उपयोग वस्तु-श्रेणी विशेष तक ही सीमित नही होना चाहिए वरन काफी उदार रहना चाहिए ताकि भण्डार का ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो सके।

(ङ) यदि सम्बधित सहकारी समिति व्यापार भी करती हो तो एक ही व्यक्ति दोनो काम कर सकता है।

यह तो रही प्रवन्ध के सम्बन्ध मे कुछ बाते, परन्तु भण्डारो का विशेष उद्देश्य तो यह है कि जहा यह भण्डार उत्पादको को जमा रखने की सामर्थ्य प्रदान करेंगे, वहा यह अन्न के भण्डार स्थान-स्थान पर एकत्रित करके देश मे अन्न के सकट का पर्याप्त मात्रा मे वचाव करेंगे।

यदि हम हर ग्राम अथवा पचायत क्षेत्र मे ऐसे भण्डारो का निर्माण करके उनमे वहा की सम्भावित सकटकालीन स्थिति से मुकाविला करने के लिए अन्न भण्डार रख सके और उसके अन्न का फसल-फसल पर नवीनीकरण होता रहे तो भाव भी ठीक रखे जा सकते है और रुपया कमाने के लोभ से अन्न को निकालने की प्रथा पर कानू पाकर हम एक तरफ तो कृत्रिम अकाल से वच सकेंगे और दूसरी तरफ वास्तविक सकट पर भी यह भण्डार काफी सहायता दे सकेंगे।

अत रिजर्व वैक की ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के प्रस्तावो के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर भण्डारो का निर्माण भारतीय कृषि, कृषक तथा अन्न समस्या के हल के लिए एक वडा ही अनुपम साधन होगा। हा, उसके प्रचलन मे वस्तुस्थिति तथा क्रियात्मकता के विचार से कुछ सशोधन करने पडेंगे।

अत आवश्यक है कि कृषि के विकास, उपज के सही लाभ तथा उनके वितरण के आवश्यक प्रवध के लिए सहकारी-भण्डारो की ओर अवश्य ध्यान दिया जाय। भण्डारो का यह भी कर्तव्य है कि वे कृषक की प्रतिदिन की अन्य आवश्यकताओ की ओर भी ध्यान दे।

: ७ :

सहकारिता और व्यापार

व्यापार शब्द के शाब्दिक अर्थ भले ही कुछ हो परन्तु आज हम इस शब्द से समझते है—वह कार्य जिसमे मुद्रा की मध्यस्थता द्वारा वस्तुओ अथवा द्रव्यो को एक स्थान से दूसरे स्थान अथवा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुचाया जाय। भारत की प्राचीन परम्परा मे इस व्यवसाय को करने वाले जन-समुदाय को समाज के उदर से तुलना दी गई थी। कितनी विचित्र तुलना थी यह। देह के पालन के लिए मनुष्य जो कुछ खाता है वह सब पेट मे जाता है। और पेट उसका शोधन करके उसमे से धातु-रक्त बनाकर हृदय के पम्प द्वारा उस शुद्ध रक्त को देह के हर अवयव के पोषण हेतु भेज देता है और स्वय केवल पोषण के लिए ही दिमाग की आज्ञा से कुछ भाग प्राप्त करता है।

व्यापार के कार्य तथा कर्तव्य भी ऐसे ही है। वह सग्रह करता है तो केवल समाज को सेवा तथा समाज के पोषण के लिए। इस भाव को पुष्ट तथा हृदयगम करने के लिए एक ओर तो धार्मिक भावना द्वारा इसे प्रोत्साहित किया गया, दूसरी ओर समाज तथा शासन के प्रतिबन्ध इसे सजीव रखने मे सहायक रहते रहे। परन्तु विदेशियो के आक्रमणो तथा विदेशी परम्परा के आघातो ने हमारी इस प्राचीन परम्परा को जर्जरित कर दिया। पराधीनता ने तो इसे मृतप्राय कर दिया और व्यापारी समाज-सेवक होने के स्थान पर समाज का शत्रु बन गया। उसने सग्रह केवल अपने पोषण के लिए प्रारम्भ कर दिया, जिससे समाज के उत्पादक अग क्षीण होने लगे। समाज की तोद बढी और शेष अग कृश हो गए। ऐसे व्यापार और व्यापारी के विरुद्ध समाज मे एक क्रान्तिकारी भावना का जागरण स्वाभाविक था। व्यापारी तथा साहूकार के ऐसे कुकृत्यो को रोकने के लिए आन्दोलन चले। ऐसे आन्दोलनो से एक तरफ वैमनस्य तथा मनमुटाव बढा दूसरी ओर विचारक लोग व्यापार की नवीन पद्धति की खोज मे लग गए। साम्यवादी रूस ने सारे व्यापार को शासनाधिकृत करने की योजना बनाई और जहा व्यापारी वर्ग का जोर शासन मे अधिक था, वहा उत्पादक वर्ग ने सह-

कारिता की पद्धति का अवलम्बन किया। मूलत ध्येय दोनो का यही रहा कि व्यापार समाज के हित मे हो। कोई एक वर्ग इसका ठेकेदार वनकर समाज का शोषण न करे। जव भी यह कार्य प्रतिकार भावना तथा हिंसा का आश्रय लेकर हुआ तब इसका पुन प्रतिकार हुआ और वह हिंसा द्वारा लाई गई अच्छी पद्धति भी स्थायी न रह सकी। अत इस कार्य का इलाज अहिसात्मक उपायो द्वारा ही स्थायी हो सकता है। और यह अहिंसात्मक उपायो द्वारा ही सफल होने वाली पद्धति है। सहकारिता मे स्वेच्छा से शामिल होना इसका प्रारम्भिक लक्षण है, उसमे हिसा का अभाव आवश्यक तथा प्राकृतिक है।

व्यापार के दो पहलू होते है—आयात तथा निर्यात। हर ग्राम से लेकर देश तक व्यापार की यह दो कोटिया चलती है। तीसरी कोटि सग्रहात्मक व्यापार की होती है, जहा स्थानीय उपज को कुछ काल तक सग्रह रखकर पुन वही विक्रय कर देते है। इसमे सव प्रकार के व्यापार मे समाज के हित की भावना को सर्वोपरि रखने के लिए सहकारिता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ है। इग्लैड की राशडेल पायोनियर सस्था, जिसका १८४० मे श्रीगणेश हुआ, और जिसका वर्णन 'सहकारिता का उदय और विकास' मे किया गया है, सहकारी व्यापार के सफल प्रयोग का एक विशिष्ट नमूना है। इस प्रकार के कतिपय स्टोर भारत मे भी सफल हुए है। परन्तु वहुधा देखा गया है कि सहकारिता पर अवलम्बित पण्यशालाए या स्टोर सफल नही होते। प्रचलित पद्धति के अनुसार इसके निम्न प्रकार है —

(१) **नागरिक उपभोक्ता स्टोर**—आम तौर पर देखा गया है कि वणिक जो चीजे लाकर वेचते है वह एक तो कई आढतियो के हाथो से गुजरती हैं। जितने अधिक हाथो से वे गुजरती है उतना ही उनका मूल्य वढ जाता है, क्योकि हर आढती अपना मुनाफा काटता है। फिर अधिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा से कम तोलने का आश्रय लिया जाता है और वहुधा उनमे मिलावट भी कर दी जाती है। अन्य कई प्रकार के उपाय प्रयोग मे लाए जाते है, ताकि उन पर अविक से अधिक लाभ प्राप्त हो। एक व्यक्तिगत दूकानदार के पास न तो इतनी धन-राशि होती है न ही वह विक्री के लिए निश्चिन्त होता है। परन्तु यदि नगर वाले सव या एक मुहल्ले के या एक ग्राम के व्यक्ति इकट्ठे हो जाय, अपनी सारी जरूरतो की इकट्ठी सूची वना ले और इकट्ठा माल मगवा ले तो

,किराये मे बचत होगी। फिर माल उत्पादक अथवा मिल या कारखाने से सीधा आवे तो बीच के आढतियो की कमीशन आदि की बचत होगी। फिर जो कुछ बचत होगी वह भी उनके लाभ मे शामिल होगी।

अत साधारणतया ऐसे स्टोर चलाने के लिए एक छोटे तथा सगठित क्षेत्र के लोगो को एक सहकारी समिति मे मिला लिया जाता है। यह समिति उसी ढग से सगठित की जाती है जैसे कि साधारण ऋण-सम्बन्धी समिति, जिसका उल्लेख पूर्व पृष्ठो मे किया जा चुका है। परन्तु यह समिति—आमतौर पर सीमित उत्तरदायित्व की होती है। समिति को एक वैतनिक मैनेजर रखना पडता है। समिति सब सदस्यो की आवश्यकता की गणना करके तदनुसार माल मगवाती है। आमतौर पर माल बेचने के भाव नियत कर लिए जाते है। यह भाव बाजार के भाव के लगभग बराबर इसलिए रखे जाते है ताकि सहकारी पण्यशाला को हानि पहुचाने के लिए वह अपने निरख बहुत नीचे न गिरा दे। परन्तु माल शुद्ध तथा अच्छा और समय पर मिल जाने का प्रयत्न किया जाता है। फिर जो लाभ होता है वह किसी एक व्यक्ति की जेब नही भरता। वरच वह सब सदस्यो अर्थात् समाज का होता है। और वह भी उन्हे केवल नकदी के रूप मे प्राप्त नही होता, वरच कई सामाजिक हित के कार्यो तथा सरक्षणो के स्वरूप मे प्राप्त होता है। इन पण्यशालाओ से जन-साधारण को बहुत लाभ होते है, जिनमे से कुछेक इस प्रकार है—

१ माल शुद्ध तथा खालिस प्राप्त होगा, जो आम दूकानदार से नही मिल सकता।

२ साधारणतया वस्तुए सस्ती प्राप्त होगी और फलत दूकानदार को भी मूल्य सस्ते करने पडेगे।

३ सहकारी पण्यशाला से माल खरीदने पर सदस्यो को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होगा जो दूकानदार से प्राप्त नही होगा।

४. सहकारी नियमो के अनुसार निधिया आदि निर्माण होने से सुरक्षित निधि बढ जाने से सदस्यो को अथवा समिति को माल मगवाने के लिए पर्याप्त धन-राशि बिना व्याज प्राप्त हो सकेगी।

५ सहकारी कार्य-पद्धति से सदस्यो को परिचय हो जायगा और सहकारी सिद्धान्त आगे बढेगे।

अभी तक पद्धति के अनुसार यही समझा जाता है कि भण्डार का माल सदस्यो को ही बेचा जाय, माल नकदी पर बेचा जाय उधार न दिया जाय, लाभ वितरण तो भाग-धन के अनुसार किया जाय परन्तु लाभ का प्रधान अश समिति से माल खरीदने के अनुपात पर अतिरिक्त लाभ बाटा जाए। लाभ से उपनिधियो के अनुसार निधिया बनाई जाय ताकि स्टोर स्वावलम्बी हो जाय।

परन्तु शनै -शनै अब यह हो रहा है कि ऐसे स्टोर उन लोगो को भी माल बेचते है जो सदस्य नही। सदस्यो को, जहा वह काश्तकार आदि होते है, कुछ उधार भी दिया जाता है।

इस तरह असदस्यो को लाभ देने से उन लोगो मे भी सहकारी समितियो के सदस्य बनने की प्रेरणा होती है। इस प्रकार के सहकारी स्टोर प्राय नगरो मे चलते है, परन्तु ग्रामो मे यह कार्य बहुद्देश्यीय ढग से चलता है। क्योकि कार्यक्षेत्र जरा विस्तृत होता है और जनता कम होती है। इसलिए वहा पर यह कार्य बहुद्देश्यीय ढग से होने लगा है। इसके सम्बन्ध मे विस्तार से अन्यत्र लिखा जायगा। यहा इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि साधारणतया यह कार्य उपरोक्त ढग से ही किया जाता है, परन्तु इन समितियो मे केवल यही काम नही होता अन्य काम भी किए जाते है। भारत मे इस प्रकार के स्टोरो का पर्याप्त प्रयोग है और सन् ५४ के आकडो के आधार पर राज्यवार इनका विवरण इस प्रकार है—

सं०	नाम राज्य	भण्डारो की सख्या	कुल सदस्य	कुल पूजी
१	मद्रास	२०५३	५,९७,११४	२,३८,१७,३२९
२	बम्बई	१,२०७	२,९२,७४५	२,६२,८६,१०६
३	प० बगाल	४००	५९,९९७	१९,९९,२९२
४	उत्तर प्रदेश	५१४	३,०२,०१०	९६,७६,६३७
५	मध्य प्रदेश	१,७१२	२,१३,३१३	१,२६,८४,२५३
६	पजाब	५८६	३४,८७८	५२,८१, ९२
७	बिहार	५ ०००	२,७२,५५६	६६,६४,११०
८	उडीसा	४३५	६५,९१०	७२,२०,२६१
९	मैसूर	१,६६५	२,३४,९०६	८१,१६,७५५
१०.	हैदराबाद	२९९	५,९१,०९३	१,७६,४०,११६
	मध्य भारत	२१२	१४,५६३,	१०,५८,७४३

सं०	नाम राज्य	भण्डारो की सख्या	कुल सदस्य	कुन्न पूंजी
१२	राजस्थान	६११	१७,७७५	२६,७२,३४८
१३	त्रावणकोर-कोचीन	७०८	७६,४३१,	३७,६६,८११
१४	पैप्सू	१५१	८,६३०	७,१८,८७१
१५	सौराष्ट्र	२८[illegible]	१७,४६२	१४,४१,५६७
१६	अजमेर	६४	८,४६२	४,५७,०५६
१७	दिल्ली	६६	१८,१६५	१६,२३ ०५१
१८.	कुर्ग	३२	१०,६४०	३,६६,६४७
१९	हिमाचल प्रदेश	२५	३,५५६	३,७६,६६२
२०	विंध्य प्रदेश	६६	३,२६२,	१,८३,००४
२१.	मणिपुर	३१८	१४,७६८	५,०२,६५२

ग्रामीण-ऋण-सर्वेक्षण समिति ने, जो कि रिजर्व बैंक ने नियुक्त की थी, भी इस प्रश्न पर विचार किया है। प्रधानतया उनका कहना यह है कि ऋण संबंधी समस्या की असफलता का कारण यह रहा कि ग्रामीणों की आवश्यकताएं विविध होती है और जब उनकी प्रधान आवश्यकताओं का प्रबन्ध सहकारिता द्वारा नहीं होता तब तक ऋण की समस्या का भी समाधान नहीं हो सकता। उनके अन्वेषण का यह निष्कर्ष है कि अन्न की पैदावार, जो ग्रामीण किसान से बनिया खरीदता है, उसका ७५% भाग वह ग्राम में ही आवश्यकता के समय बेच देता है। इस कार्य में सहकारिता का भाग केवल १% से अधिक नहीं। यही कारण है सहकारी समितियां उत्पन्न होने वाले धान के बदले ऋण नहीं दे सकती और सहकारी समिति तब तक ग्रामीण बनिये का स्थान नहीं ले सकती और न ही प्रभावशाली हो सकती है। इस दिशा में [illegible], जो बम्बई राज्य में है, का नाम [illegible] है। यह १९[illegible] में रजिस्टर हुई। सन् १९५० में [illegible] जिसमें ५८,४६०) रु० [illegible]। यह ६[illegible]% [illegible] है। [illegible]

रुपए का क्रमश व्यापार किया। चूहो से सुरक्षित इस समिति के दो वडे-वडे गोदाम है।

परन्तु इसमे सन्देह नही कि ऐसी समितियो की सख्या वहुत ही कम है। कुछ ऐसी भी है जो व्यापार सम्बन्धी सहकारी समितियो की भावी सफल विधियो की ओर सकेत करती हैं। उक्त रिपोर्ट मे यह सुझाव दिया गया है कि निर्दिष्ट क्षेत्रो के लिए वडी-वडी सहकारी समितिया वनाई जाय। और इनके पुष्ट करने के लिए इनमे भी सरकारी भाग रखा जाय। उनका कथन है कि इनमे ५१% सरकारी हिस्सा होना चाहिए। ऐसी समितियो के जिला स्तर पर वस्तु-विभाजन के अनुसार वनाए जाने का प्रस्ताव है। यह भी सुझाव है कि हिस्सो के धन की महत्तम तथा न्यूनतम मात्रा नियत कर दी जाय।

उक्त रिपोर्ट के सुझावो पर अमल करने का प्रयोग द्वितीय पचवर्षीय योजना मे प्रारभ हो गया है। राज्य-सरकारे हिस्सो की खरीद मे ५१% लगाने लग गई है। इस प्रयोग का पूर्ण मूल्याकन तो ५ वर्षो के उपरान्त हो सकेगा परन्तु जो कुछ इस थोडी अवधि मे दृष्टिगोचर हुआ है वह पर्याप्त शिक्षाप्रद है।

कार्य प्रारभ होने पर रुपया केन्द्र से प्राप्त करके विभाग के कर्मचारी सहकारी समितियो के हिस्से खरीद रहे है। हर ऐसी समिति की प्रवन्धक समिति मे सरकार अपने तीन सदस्य मनोनीत कर देती है। परन्तु अभी तक इस धन का सदुपयोग नही हो सका है। इसके कारण कई है। इनका सक्षेप से उल्लेख किया जाना पर्याप्त मात्रा मे शिक्षाप्रद होगा—

(१) विभाग के कर्मचारी कुछ प्रशिक्षण तो प्राप्त करते है, परन्तु न तो इनका प्रारभिक प्रवेश इस वात पर निर्भर होता है कि वह ग्रामीण जनता तथा किसान समुदाय के हो, और न ही उनकी पद-वृद्धि उनकी क्षेत्रीय सफलता पर निर्भर होती है। इससे उनमे वास्तविक सहकारी भावना न तो जागृत होती है, और न ही पनपती है।

(२) पुलिस तथा रेवेन्यू आदि विभागो के कर्मचारियो को देखकर सहकारी विभाग के कर्मचारियो मे भी जनता के साथ एक होने के स्थान उसपर रोव जमाने की भावना वढ रही है। जिसका फल यह है कि उक्त कर्मचारी वर्ग दिन-प्रतिदिन ग्राम जनता का विश्वास खो रहा है।

(३) जनता मे सहकारी भावनाओ के जागरण तथा प्रचार हेतु कार्य नही हो

रहा, और यह कार्य एक सेवा की भावना से सम्पन्न कर्मचारी-वर्ग ही कर सकता है।

(४) सहकारी समितियो मे भी ईमानदार तथा सहकारी भावना-सम्पन्न व्यक्तियो को प्रोत्साहन देने का कोई प्रवन्ध नही है।

(५) सहकारी सभाओ के कर्मचारियो को न तो प्रशिक्षण मिलता है और न ही उनके पद मे कोई स्थायित्व है।

(६) वेतनो का स्तर ऊचा होने पर और उसी अनुपात मे सहकारी समितियो की आय मे वृद्धि न होने के कारण वह प्रचलित अनुपात के अनुसार अपने कर्मचारियो को वेतन नही दे सकती।

(७) कुछ ऐसी धारणा बन गई है कि सब लोग सहकारी कार्य से ऐसी अनहोनी आशाए रखते है कि वहा प्रवन्ध सुचारु हो, दिन-रात कार्यकर्ता काम करे, वेतन न ले और रोटी घर से खाय। ऐसी धारणाओ मे सहकारी सस्थाओ का पनपना सभव नही।

(८) जिन कार्यों को शेष व्यापारी सस्थाओ मे भूल समझा जाता है उन्हे सहकारी समितियो मे गबन बताकर उन्हे बदनाम किया जाता है।

(९) सहकारी समितियो से भी सरकारी कर्मचारी उसी प्रकार की खातिर व सत्कार की आशा करते है जैसे कि व्यक्तिगत व्यापारियो से।

(१०) इन सब वातो का यह प्रभाव होता है कि सहकारी समितियो मे भी उसी प्रकार के व्यक्ति आगे आ जाते है जो किसी न किसी ढग से कर्मचारी वर्ग की खातिर, सत्कार, चाय-पार्टी आदि के लिए धन निकाल सके। और जब इस प्रकार के कार्यों के लिए धन निकालने की छूट दी जाती है तब फल वही होते है जो स्वाभाविक है। ऐसे व्यक्ति इसी तरह अपने लिए भी धन निकालते है। और परिणाम वही होता है जो सामने आ रहे है।

नतीजा यह है कि वहुत-सी समितिया घाटे मे जा रही है। कही गवनो की तहकीकाते चल रही है और द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रणो के वावजूद सहकारी समितियो की सफलता अनिश्चित जैसी ही नजर आती है। जहा तक विभाग का सम्वन्ध है उसके वारे मे तो पृथक् अध्याय मे लिखा जायगा और यहा पर केवल प्रारभिक दशा मे जो प्रवन्ध मे आवश्यकताए है, उनके वारे मे

सकेत किया जाना आवश्यक है ।

जिस समय तक पर्याप्त मात्रा मे समितियो के लिए कर्मचारी समुदाय प्रशिक्षित नही हो जाते और सहकारी समितियो की सहायता हेतु सरकार धन दे रही है, तब तक यह जरूरी है कि प्रवन्ध ऐसे हाथो मे न हो जो काम तो जानते न हो परन्तु रुपया ऐठने की भावना प्रवल हो, और जो कर्मचारी समुदाय को चाय आदि पिलाकर तथा सत्कार आदि करके अपना रुपया ऐठने का काम जारी रखे । यदि व्यापार-कुशल वश-परम्परागत व्यापारियो को उक्त कार्य पर रख लिया जाय तो वे शनैः-शनै सारे काम पर अपना आधिपत्य जमा लेगे और सहकारिता का विकास कुण्ठित हो जायगा। अत व्यापार-कार्य को कुशल तथा सहकारिता-परक वनाने के लिए कुछ साकेतिक सुझाव यह है—

प्रारम्भिक स्तर—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि ग्राम्य-स्तर पर व्यापार का कार्य विशेष श्रेणी की पृथक् समितिया नही करती, एक ही वहुद्देश्यीय सहकारी सभा सब कार्य करती है । और इसकी कार्य-पद्धति इस तरह होती है कि या तो यह समिति एक वैतनिक विक्रेता रख लेती है, जो क्रय-विक्रय का काम करता है । परन्तु साधारणतया यह देखा गया है कि वैतनिक कर्मचारी केवल अपने पैसे कमाने के लिए समय लगाते है, समिति के हित की ओर उनका ध्यान नही होता । इस प्रकार वे घाटे मे चली जाती है । दूसरी पद्धति यह है कि समितिया अपनी वस्तुओ के विक्रय के लिए एक दूकानदार को कमीशन पर नियुक्त कर लेती है । ऐसा दूकानदार वहुधा इस कार्य को अपने शेष व्यापार को चलाने के लिए उपयोग मे लाता है । समिति के रुपये तथा उसके सदस्यो के द्वारा उसे शेष दूकानदारो पर प्रभुता प्राप्त हो जाती है । उसका व्यापार चमक उठता है । उसमे अहकार वढता है। वह अपने लाभ के लिए समिति की प्रवधक-समिति के सदस्यो को कई प्रलोभनो द्वारा वश मे करने के प्रयत्न मे लगा रहता है । इस पद्धति द्वारा आर्थिक हानि तो वच सकती है परन्तु समिति वदनाम हो जाती है । उसका कार्य विस्तृत नही हो पाता । सहकारिता के मौलिक भावो को धक्का पहुचता है और इस तरह शनै -शनै सहकारिता की प्रगति रुक जाती हे । ऐसी परिस्थिति मे कार्य-पद्धति सहकारिता के मौलिक उद्देश्यो को सामने रख-कर और वास्तविक स्थिति का अध्ययन करके ही सोची जा सकती है, ताकि

वह व्यावहारिक होने के साथ-साथ सहकारिता के उद्देश्यो की पूर्ति मे भी सहायक हो।

इसलिए सुझाव यह है कि प्रारंभिक बहुद्देश्यीय सहकारी समिति के क्षेत्र के सब दूकानदार समिति के सदस्य हो। परन्तु प्रबन्धक-समिति मे उनका प्रतिनिधित्व उनकी क्षेत्रीय जनसख्या के अनुपात से अधिक नही होना चाहिए और प्रबन्धक-समिति मे वह व्यक्ति नही होना चाहिए जो इस प्रस्तावित योजनाधीन समिति से लाभ उठाता हो अथवा उसके व्यापार मे मुकाबिला करता हो। मुकाबिला करने वाला तो समिति का सदस्य भी नही रहना चाहिए।

समिति को अपना एक भण्डार रखना चाहिए और स्थान की आवश्यकता के अनुसार सब माल थोक भाव से मगवाना चाहिए। थोक माल मगवाने का सब काम समिति के वेतनिक कर्मचारियो द्वारा प्रबन्धक-समिति की योजना द्वारा सम्पन्न होना चाहिए। सदस्य दूकानदार इस योजना द्वारा लाभ उठाना चाहते हो तो उन्हे व्यापार के लिए ग्राम बाट देने चाहिए। यह दूकानदार निश्चित मूल्यो पर माल भण्डार से ले और समिति द्वारा निश्चित दरो पर आगे बेचे। अर्थात् परचून दर भी समिति द्वारा निर्धारित हो। जो सदस्य ऋण पर सौदा खरीदना चाहे उनके लिए भी नियमादि तथा महत्तम ऋण सीमा समिति द्वारा निर्धारित रहनी चाहिए। यह दूकानदार थोक माल केवल समिति की मध्यस्थता द्वारा ही खरीद सकेंगे। इस तरह व्यापार मे व्यवहार-कुशलता रहेगी, मूल्यो पर पूर्ण नियत्रण रहेगा, उत्पादक तथा उपभोक्ता श्रेणी का व्यापार पर पूरा नियत्रण रहेगा, कोई एक दूकानदार ठेकेदार नही बन सकेगा; सहकारी भावनाए पनपेगी। समिति कभी घाटे मे नही रहेगी, मुकाबिला समाप्त हो जाएगा और सघर्ष मे कमी होगी। इसी तरह उत्पादन सबधी व्यापार भी सगठित हो सकता है। रूढिवादी सहकारी विचारक तथा विभागो के कार्यकर्ता इस विचार से सभवत सहमत न हो सके, परन्तु किसी भी नये विचार को सिद्धान्त तथा व्यावहारिकता की कसौटी पर परखना पडता है। इसमे विचार-सकीर्णता को स्थान नही मिलना चाहिए।

है। कई राज्यो मे ताल्लुका अथवा तहसील स्तर पर सहकारी समितयो के सघो अथवा मण्डलो का आयोजन किया है। ग्राम्य-स्तर पर व्यापार करने वाली सस्थाओ की सहायता तथा पोषण यह करेगी, इस सगठन के पीछे ऐसी धारणा रहती है। परन्तु यहा पर एक आपत्ति की जाती है कि हम इस कार्य मे जितने अधिक दर्जे कायम करते है, उतना ही वस्तुओ का मूल्य वढता है।

परन्तु इस आपत्ति मे जहा कुछ सार्थकता है वहा इसमे भ्रान्ति यह है कि हर ग्राम का सीधा सम्वन्ध उत्पादक केन्द्रो से होना सभव नही। और फिर ग्राम का उत्पादन अन्नादि की शक्ल मे, जो अपनी आवश्यक्ता से अधिक हो, का वितरण अर्थात् विक्रय पहले अपने ताल्लुका मे ही होना चाहिए। जहा तक मूल्य मे वृद्धि का सम्वन्ध है, उसमे नियन्त्रण लाना कोई कठिन काम नही। और फिर यह आवश्यक नही है कि माल जव वडी मात्रा मे मनो कपडा, गाठो मे आना हो तो वह भी माध्यमिक स्तरो पर रुके, वह सीधा उत्पादन केन्द्र से ग्राम भण्डार को जा सकता है। इसी तरह ग्राम के उत्पादन का निर्यात भी होगा। वस्तुत यह तहसील व ताल्लुके का सगठन ग्रामो के लिए आयात-निर्यात वाली वस्तुओ की आवश्यक्ताओ का लेख सग्रह करके उनका प्रवन्ध करेगा। अतः प्रकट है कि इस माध्यमिक स्तर के सगठन का होना आवश्यक है। हा, रही मूल्य-वर्धन की वात। उसके लिए उत्पादन केन्द्र से लेकर उपभोक्ता केन्द्र तक जो व्यय डालना हो वह अखिलदेशीय सस्था द्वारा निर्धारित हो जाना चाहिए और उसका भाग अखिल देशीय राज्य, जिला व ताल्लुका या तहसील सगठन तक वाट लेना चाहिए। और कुल इस प्रकार के व्यय के ५०% तहसील सगठन, ३०% ज़िला सगठन, १५% राज्य सगठन तथा ५% अखिल देशीय सगठन को जाना चाहिए। ताल्लुका या तहसील सगठन के इस सक्षिप्त विवरण के वाद ज़िला, राज्य तथा अखिल देशीय सगठन के विवरण की आवश्यक्ता नही रहती क्योकि इन उपरोक्त सगठनो के कार्य भी स्तर के अनुकूल ग्राम्य सगठनो के अनुकूल ही होगे। ऊपर के स्तरो के कार्य सहायता-परक तथा मत्रणा आदि के होगे। सारे सहकारी सगठन का एक मूर्तिमान चित्र अन्य अध्याय मे मिलेगा। यहा पर केवल व्यापारिक सगठन का एक विहगम वर्णन मात्र ही ध्येय है। व्यापार मे व्यक्ति की कार्य-कुशलता का पूर्ण उपयोग होने के साथ-साथ व्यक्ति के अधिकारो तथा उसके महत्त्व का समाज-हित मे प्रयोग होना ही सहकारिता का चरम

लक्ष्य है। समाज और व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध जीव और देह के सम्बन्ध की तरह है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नही रहता। एक दूसरे का पूरक है। और सहकारिता ही इन वास्तविक नाते को व्यवहृत करने की क्षमता रखती है। अत उपरिलिखित ढग से व्यापार को आयोजित करने से व्यापार व्यक्ति तथा समाज का सेवक बन सकता है, अन्यथा तो व्यापार मानव का स्वामी बनकर मानव के शोषण का एक आसुरी साधन मात्र ही बनकर रह जाता है।

: ८ :

सहकारी अधिकोषण या बैंकिंग

के लिए भी यह आवश्यक होता है कि हम व्यक्ति और समाज के नाते को भली प्रकार समझ कर ऐसी सस्थाओ का निर्माण करे जो स्वयमेव व्यक्ति तथा समाज को सत्य पथ पर चलाती रहे।

बैंकिग—इस कार्य मे भी ऐसे ही हुआ। भारत मे हुडियो का प्रचलन था। परतु उसका लाभ धनिक ही उठा सका। इसी प्रकार पश्चिम मे भी बैंक धनिको की ही सम्पत्ति रहे। यह बैंक व्यक्तिगत व्यापारी व साहूकार के लिए उसके शोषण के कार्यक्रम मे सहायक बन गए। आज भी ऐसी परिस्थिति है कि कई साहूकार बैको से सस्ते दर ऋण पर रुपया लेकर उसे किसानो या अन्य विवश व्यक्तियो को भारी दरो पर देकर अनुचित रूप से बहुत लाभ कमाते है। अत समाज के लिए वरदान रूप बैंक किसान, मजदूर तथा दीन व विवश के लिए एक अभिशाप बनकर रह गये। ग्रामो को इनसे कोई लाभ न हो सका। किसान के ऋण के दर को यह न घटा सके। उसके उत्पादन को कुछ काल जमा रखने की क्षमता भी इनकी कृपा से न आ सकी। मजदूर, किसान आदि पूर्ववत ही साहूकार के वश मे रहे। यहा ही यह करुण गाथा समाप्त नही हो जाती। यह बैंक उन सहकारी समितियो को भी आर्थिक सहायता नही दे पाए जो कि किसान व मजदूर की सेवा करती थी।

सहकारी अधिकोषण का प्रादुर्भाव सहकारी समितियो की उपरोक्त आवश्यकता ने किया। प्रारभिक स्तर पर तो यह कार्य ऋण-सम्बन्धी सहकारी समिति ही करती है परन्तु सहकारी समितियो को धन जुटाने के लिए बैंको की आवश्यकता होती है जिन्हे आमतौर पर केन्द्रीय बैंक कहा जाता है। मैक्लेगन कमेटी ने इन बैंको को निम्न तीन श्रेणियो मे विभक्त किया है —

(१) वह बैंक जिनके सदस्य केवल व्यक्ति ही बन सकते है।

(२) वह बैंक जिनके सदस्य केवल सस्थाए या समितिया ही बन सकती है।

(३) वह बैंक जिनके सदस्य व्यक्ति व समितिया दोनो बन सकते है।

प्रथम श्रेणी के बैंक ज्वाइट स्टाक बैंको से बहुत मिलते से है। उपरोक्त कमेटी ने इन बैंको को सहकारिता के अनुकूल न बताकर इनको रजिस्टर न करने की सिफारिश की है। इसी कारण इनकी सख्या बहुत कम हो गई है। इस प्रकार के बैंक अब कतिपय नगरो मे ही पाए जाते है। परन्तु ज्यो-ज्यो सहकारिता का क्षेत्र बढ रहा है, नगरो मे इनकी आवश्यकता को फिर से अनुभव

किया जाने लगा है। क्योंकि ज्यो-ज्यो व्यापार पूर्वोक्त क्रम से आयोजित होगा, त्यो-त्यो व्यापारियो को सहकारी बैंको द्वारा कई प्रकार की सुविधाओ की आवश्यकता पडेगी, और अन्य प्रकार के सहकारी बैंक इस कार्य मे प्रचलित नीति के अधीन सहायता नही दे सकेगे। और यदि प्रारभिक नागरिक सहकारी समिति से सम्बद्ध व्यापारी समुदाय को सहायतार्थ ज्वाइट स्टाक बैंको का आश्रय लेना पडा तो उनका सहकारी समितियो से नाता शिथिल होता जायगा और सहकारी व्यापार पद्धति पुष्ट न हो सकेगी। इनका शेष प्रवन्ध उसी प्रकार का होगा जैसा कि अन्य अधिकोपो का।

दूसरी श्रेणी के अधिकोषो के सदस्य केवल सहकारी समितिया ही होती है। वास्तविक रूप मे यह सहकारी बैंक होते है। इनकी हिस्सेदार भी समितिया ही होती है। इसका अर्थ यह होता है कि समितिया अपनी वचत से ही ऋण प्राप्त करती है। पहले इन बैंको का क्षेत्र वहुत छोटा रखा जाता था और अधिक रुपये की भी आवश्यकता नही होती थी। कुछ सहकारी सघ मिलकर ऐसे बैंको का निर्माण कर लेते थे। परन्तु व्यक्तियो को इनसे लाभ न पहुचने के कारण जनता से अमानत का रुपया भी कम जमा होता है। जनता की इसमे रुचि कम होती हे। परन्तु अब तो ग्रामीण ऋण-सर्वेक्षण समिति ने यह सिफारिश की है कि केन्द्रीय बैंक बहुत छोटे क्षेत्र के लिए न हो, और जहा राज्य छोटा हो वहा एक ही राजकीय अधिकोप सगठित किया जाय और उपयुक्त स्थानो पर उसकी शाखाए हो। जहा राज्य वडा हो वहा जिले के स्तर पर केन्द्रीय बैंक सगठित किये जाय और जिला अधिकोप राज्य के शिखरीय अधिकोष मे सगठित किए जाय। परन्तु यह अधिकोप भी व्यक्तिगत आवश्यकताओ को पूरा नही करेंगे, अतः श्रेणी (१) के अधिकोपो का सगठन प्रारभिक स्तर पर एक प्रारभिक सहकारी समिति के रूप मे आवश्यक होगा, जो कि जिला अथवा वडे अधिकोप का हिस्सेदार बनकर उनसे यथावश्यक सहायता प्राप्त कर सकेंगे। इन बैंको को रिजर्व बैंक तथा सरकार से सहायता प्राप्त हो सकेगी।

तीसरी श्रेणी मे जो अधिकोष पडते है उनके सदस्य व्यक्ति तथा समितिया दोनो हो सकते है। पहले इस प्रकार के सहकारी बैंक काफी बडे होते थे। परन्तु भारत मे अब इस कोटि के अधिकोपो को प्रोत्साहन नहीं दिया जा रहा। अभी

तक इस प्रकार के अधिकोष है, परन्तु शनै-शनै यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सहकारी केन्द्रीय अधिकोषो के व्यक्तिगत सदस्य न रहने दिए जाय। केवल वही व्यक्तिगत सदस्य रहेगे, जिन्हे मत देने का अधिकार न होगा। ग्रामीण ऋण-सर्वेक्षण समिति ने प्रस्ताव करते समय इस बात का ध्यान रखा है कि ये सस्थाए इतनी छोटी न हो कि इनका खर्च अधिक हो जाय और इतनी बडी भी न हो कि समिति और उसका उपयोग करने वालो मे कोई सम्पर्क ही न रह सके।

१९५१-१९५२ मे भारत मे कुल मिलाकर ५०९ केन्द्रीय अधिकोष अथवा सघ थे जिनकी व्यक्तिगत सदस्य-सख्या १,१८,४०६ तथा १,१२,९१२ सहकारी समितिया थी। इन अधिकोषो की दशा निर्बल तथा क्षीण ही कही जा सकती है। कई राज्यो मे ऐसे अधिकोषो की सख्या अत्यधिक है और सदस्य सहकारी समितियो की सख्या बहुत कम। इन अधिकोषो के कर्मचारी समुदाय को न तो पर्याप्त प्रशिक्षण मिला है और न ही इनकी सख्या पर्याप्त है। इस कारण उनका ऋण आदान-प्रदान कार्य भी सुचारुता तथा कुशलता से नही होता रहा। ग्रामीण ऋण-सर्वेक्षण समिति ने इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय प्रस्ताव रखे है, परतु उनका विवरण एक साधारण केन्द्रीय बैंक के सगठन तथा सचालन के वर्णन के पश्चात् देना ही उचित होगा। एक केन्द्रीय अधिकोष आमतौर पर तो एक सहकारी समिति ही का रूप है। उसी तरह इनका सचालन होता है। केवल इनके कार्य विशिष्ट होते है।

पूजी का निर्माण – अधिकोष मे पहली समस्या होती है पूजी निर्माण करने की। इन अधिकोषो के भी पूजी निर्माण के वही साधारण साधन है यथा (१) हिस्से, (२) अमानते, (३) ऋण, (४) सुरक्षित कोषादि।

हिस्से—बैंको के हिस्से भी उसी प्रकार वेचे जाते है जसे अन्य समितियो के। परन्तु लोगो को बैंको के हिस्से खरीदने की प्रेरणा देने के लिए कुछ हिस्सो को प्राथमिकता दी जाती थी। इन भागो के अधिलाभ तथा विघटन के समय इनको सर्वप्रथम सुरक्षित रखा जाता था। परन्तु इस तरह करने से प्रधानता रुपये को मिलती है मानव को नही, और व्यक्तिगत हिस्सेदार बढ जाने की सभावना रहती है। अत इस प्रथा को शनै शनै निरुत्साहित किया ज रहा है। प्रारभिक नागरिक बैंको मे ऐसा हो सकता है। हिस्से के मूल्य के सम्बन्ध

मे कोई कड़ा नियम नही । यह सब स्थानीय परिस्थिति पर निर्भर होता है । परन्तु जहा व्यक्तिगत सदस्य हो, हिस्सो का मूल्य इतना होना चाहिए कि कम आय वाले लोग भी सदस्य बन सके और बैंक धनिको की ही ठेकेदारी न बन जाय । जहा बैंक की सदस्य समितिया हो वहा शेयर का मूल्य क्षेत्र की छोटी सहकारी समिति की क्षमता के अनुसार होना चाहिए । सहकारी अधिनियम के अधीन कोई भी व्यक्ति १०,०००) रु० के मूल्य से अधिक के हिस्से नही ले सकता। और आमतौर पर उपरोक्त सीमा के साथ-साथ यह भी सीमा रखी जाती है कि कोई भी हिस्सेदार १०० से अधिक हिस्से न खरीदे । साथ ही कोई भी व्यक्ति कुल पूजी के १/५ से अधिक हिस्से नही खरीद सकता ।

बैंको मे सीमित उत्तरदायित्व की पद्धति को ही अपनाया जाता है । यह उत्तरदायित्व कई स्थानो पर हिस्सो के नामाकित मूल्य तक और कई स्थानो मे शेयरो के एक निश्चित गुणन तक रखा जाता है । परन्तु मेक्लेगन कमेटी की राय मे अधिकोषो की सामूहिक जिम्मेदारी हिस्सो के असली मूल्य से अधिक नही होनी चाहिए ।

लाभ वितरण—अधिकोष जो रुपया अपने कारोबार से कमाता है उसे लाभ कहते है । इस लाभ मे से २५ प्रतिशत राशि सुरक्षित कोष मे जमा करली जाती है । उस तरह तो जो लाभाश सदस्यो या हिस्सेदारो मे बाटा जाता है उसपर शेयर के मूल्य के १० प्रतिशत की सीमा कानून के अधीन लागू होती है। परन्तु अधिकोष अपने उपनियमो मे इससे कम एक सीमा नियत कर लेते है जो ६ से लेकर ८ प्रतिशत तक होती है। प्रारम्भिक समितियो की तरह अन्य निधिया भी होती हे । और सबसे आवश्यक कोष होता है क्षतिपूर्ति कोष। क्योकि ऋण कई बार कठिनता से प्राप्त होता है या अप्राप्य हो जाता है, तो इस प्रकार के घाटे के लिए निधि का होना जरूरी होता है । इस प्रकार निधियो के बन जाने से अधिकोष पुष्ट तथा स्थायी हो सकता है ।

अमानतें—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि अधिकोषो के धन-सग्रह का एक साधन अमानते भी होती हे। अमानतो की प्रथा एक ओर तो अधिकोष को धन उपलब्ध कराती है, और दूसरी ओर समितियो तथा अन्य व्यक्तियो मे बचत के स्वभाव को प्रोत्साहन देती है। इसी कारण इन अमानतो का व्याज दर ऐसा रखा जाता है कि जनता की इस आदत को प्रोत्साहन मिलता रहे । फिर

यह अमानते निश्चित समय के लिए होती है अत इनका उपयोग समितियो को ऋण देने मे सुगमतया हो सकता है। समितियो को भी कई राज्यो मे यह हिदायत रहती है कि वे अपना रिजर्व फड (सुरक्षित कोष) अधिकोष मे जमा रखे। हर राज्य ने समितियो से ऋण पर व्याज के दर तथा अमानतो के व्याज दर मे परिस्थितियो के अनुसार भेद रखा है। यह भेद इसलिए आवश्यक है कि अधिकोष को अपना सारा खर्च निकालने के लिए आय चाहिए। यह भेद समितियो के लिए आमतौर पर तीन प्रतिशत होता है। और इसको ऐसे स्तर पर रखा जाता है कि समितिया अपने सदस्यो को नौ प्रतिशत प्रति वर्ष पर ऋण दे सके।

चालू-हिसाब—प्रारभिक ऋण देने वाली समितियो की तरह केन्द्रीय अधिकोष भी साधारणतया चालू हिसाब नही खोलते थे, क्योकि इससे अधिकोष का खर्च बढ जाता है, धोखा-धडी का भय रहता है, व्यापारी-बैको से सघर्ष आरभ हो जाता है, कर्मचारियो को कानून से परिचय की आवश्यकता अधिक हो जाती है, आदि-आदि। इस प्रकार के हिसाब पर कोई व्याज नही दिया जाता वल्कि चैकबुक आदि के व्यय के उपलक्ष्य मे अधिकोष छमाही कुछ लेते है। पहले इस प्रकार के हिसाब वही केन्द्रीय अधिकोष खोलते थे जहा अन्य व्यापारी अधिकोष नही होते थे। परन्तु अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि अधिकोष मे अधिकोषण की सब सुविधाए प्राप्त न हो तो अधिकोष जनप्रिय नही हो पाते। अत अब इस प्रकार के सब कार्य सहकारी अधिकोष करने लग गए है।

बचत बैंक—पहले आमतौर पर यह ख्याल था कि यह काम डाकखाने के पास ही रहने दिया जाय। परन्तु शनै-शनै बचत बैंक की परिपाटी देश मे इतनी फैल गई है कि हर अधिकोष यह काम करता है, और इसके बिना अधिकोष अपूर्ण समझा जाता है।

ऋण-प्राप्ति के साधन—हर अधिकोष को ऋण देने का अपना कार्य चलाने के लिए स्वय भी ऋण चाहिए। यह ऋण मिलना भी चाहिए पर्याप्त मात्रा मे और सस्ते दरो पर। अत सहकारी अधिकोषो को यह ऋण व्यापारी अधिकोषो से तो प्राप्त नही हो सकता। जिला अथवा इससे भिन्न स्तर पर जो केन्द्रीय सहकारी अधिकोष होते है वह राज्य के केन्द्रीय सहकारी अधिकोष से अपनी निश्चित महत्तम ऋण-सीमा के अन्दर ऋण प्राप्त करते है। राज्य के केन्द्रीय

सहकारी अधिकोष अब प्राय सभी राज्यो मे स्थापित हो चुके है। यह राज्य के केन्द्रीय सहकारी अधिकोष-ऋण रिजर्व बैंक तथा राज्य शासन से प्राप्त करते है। राज्य-सरकार तो इस प्रकार का ऋण विशेष कार्यो के लिए देती है। परन्तु रिजर्व बैंक इस सगठन को चालू रखने के लिए ऋण देता है। रिजर्व बैंक का 'कृषि साख विभाग' यह कार्य करता है। और जो सहायता उक्त बैंक के उपरिलिखित विभाग ने केन्द्रीय सहकारी बैंक को, विशेषतया नये सहकारी आन्दोलन को साधारणतया दी है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। काश्तकार के ऋण पर व्याज-दर कम करने के अभिप्राय से इसी बैंक ने करोडो रुपया १$\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रति वर्ष के व्याज पर राज्यो के केन्द्रीय सहकारी अधिकोपो को दिया है। शासन आमतौर पर ३$\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रति वर्ष के व्याज दर पर ऋण देता है।

प्रवाहशील पूजी—अधिकोषो को आमतौर पर रुपये की आवश्यकता रहती है। ओर यदि वह सारी धनराशि को दीर्घकाल के लिए ऋण आदि मे लगा दे तो उनको आकस्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए धन जल्दी ही उपलब्ध नही हो सकता। इसलिए अधिकोष कुछ पूजी ऐसी रखते है जो एकदम वसूल की जा सके और शीघ्र अदायगी के लिए प्रयोग मे लाई जा सके। ऐसी पूजी को अधिकोष की प्रवाहशील पूजी कहते है। केन्द्रीय अधिकोषो की प्रवाहशील पूजी मे इतना रुपया होना चाहिए कि यदि किसी समय ऋण आदि का रुपया वसूल न किया जा सके, तो भी अधिकोष अपने कारोबार को चला सके और सदस्य-समितियो की आवश्यकताओ को पूरा कर सके। कई वार ऐसा हो जाता है कि फसल खराब हो जाती है, या अचानक भाव गिर जाते है, या बीमारी पड जाती है। ऐसी अवस्था मे समितिया ऋणो की किश्त समय पर नही दे सकती तथा उन्हे और रुपये की आवश्यकता होती है। इस मौके पर यदि बैंक के पास पर्याप्त मात्रा मे प्रवाहशील पूजी न हो तो काम मे रुकावट पड़ सकती है। कुल कार्यगत पूजी का कितना अश प्रवाहशील पूजी रहे, इसके सम्बन्ध मे नियमो आदि मे विधान रहते है। उनकी सूची बनाकर वडे बैंक तथा विभाग मे भेजनी पडती है।

अतिरिक्त-निधि—सहकारिता का प्रधान उद्देश्य यह है कि लोग बचत का स्वभाव पैदा करे, ऋण न ले और स्वावलम्बी हो जाय। अत' जब केन्द्रीय

अधिकोष अपने क्षेत्र मे ठीक रूप से काम करते है तो इन अधिकोषो के पास समय पर किश्त प्राप्त होने तथा समितियो को ऋण की अधिक जरूरत होने के कारण केन्द्रीय अधिकोषो के पास अतिरिक्त राशि जमा हो जाती है। यह धन-राशि जब अस्थायी रूप से जमा होती है तो वह राज्य के शिखरीय अधिकोष, और जहा ऐसे अधिकोष न हो तो भारत के स्टेट बैंक मे अस्थायी अमानत मे जमा करते है, और यदि स्थायी हो तो स्थायी अमानत मे। स्वतत्रता से पूर्व ऐसी परिस्थिति जिला होशियारपुर (पजाब) के कुछ केन्द्रीय अधिकोषो मे हो गई थी। परन्तु ऐसी दशा तब ही हो सकती थी जब सहकारिता अपना मुख्य उद्देश्य ऋण तक ही सीमित रखती थी तथा अन्य कार्यो को ऋण के साथ सगठित नही किया गया था। अब सगठित कार्य-पद्धति को अपनाने से जहा ऋण, भण्डार, व्यापार, उद्योग तथा कृषि-सुधार को एक दूसरे पर आश्रित समझा जा रहा है, ऐसे अतिरिक्त-धन के जमा होने की सभावना कम हो गई है।

पूजी का उपयोग—केन्द्रीय अधिकोष का मुख्य ध्येय तो यह होता है कि वह समितियो को ही रुपया दे, व्यक्तियो को नही। परन्तु व्यक्तियो के लिए और अधिकोष न होने पर, तथा व्यक्तियो के साथ व्यवसाय द्वारा आय-प्राप्ति अथवा सदस्यो को या प्रबन्धक-समिति के मित्रो को अनुगृहीत करने के लिए केन्द्रीय अधिकोष व्यक्तियो को ऋण अभी तक देते है। वस्तुत होना तो इस तरह चाहिए कि जिस नगर मे ऐसे कार्य की आवश्यकता हो वहा नागरिक-सहकारी-अधिकोष खोल दिया जाय। यह सहकारी अधिकोष केन्द्रीय अधिकोष का सदस्य बनकर ऋण प्राप्त कर सकेगा और स्वय एक प्रारम्भिक सहकारी समिति की तरह समाज की सेवा कर सकेगा। इस प्रकार केन्द्रीय सहकारी बैंक को कोई ऐसा कार्य करने की आवश्यकता न रहेगी। जहा भूमि बन्धक बैंक न हो वहा केन्द्रीय बैंक सहकारी समितियो द्वारा दीर्घकालीन ऋण भी दे सकता है। वहा जो बन्धक पत्र समिति के नाम होगे वही पत्र केन्द्रीय अधिकोष के पास बन्धक के रूप मे रखे जा सकते है।

सदस्य समितियो की साख का परीक्षण—केन्द्रीय बैंक का वास्तविक ध्येय ग्रामीण समितियो को आर्थिक सहायता देना है। ग्रामीण सहकारी समितिया भी अब केवल शुद्ध ऋण सम्बन्धी समितियो को छोडकर सीमित उत्तरदायित्व

वाली होती है। आमतौर पर देखा गया है कि सहकारी विभाग के कर्मचारियो की सिफारिश पर केन्द्रीय बैंक समितियो को ऋण दे देते है। परन्तु इस पद्धति मे एक निर्बलता है कि विभाग के कर्मचारीगण तबदील होते रहते है। उनका अधिकोष के आर्थिक हित से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नही होता। उनकी उन्नति की निर्भरता आन्दोलन की सफलता पर नही होती। उनके अन्त करण मे अभी आन्दोलन के लिए विश्वासजनित श्रद्धा का प्रादुर्भाव नही हुआ। इन कारणो से उनकी सिफारिशो मे उस सजीव उत्तरदायित्व की झलक नही दिखाई पडती जिसके बिना आन्दोलन का पनपना कठिन होता है। फल यह होता है कि इस प्रकार प्रदत्त ऋणो की वसूली मे कठिनाइया होती है। जहा तक केन्द्रीय अधिकोषो के सचालक परिषदो के निर्णयो का सम्बन्ध है, वहा भी ऑकडो के तथ्यो को भूलकर कई अन्य कारणो से प्रभावित होकर ऋण प्रदान कर दिए जाते है।

अत आवश्यक है कि अधिकोपो के पास अपना कोई ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि वे ऋण देने से पूर्व समिति की ऋण को समय पर लौटाने की शक्ति का अनुमान लगा सके। अधिकोष को इस ज्ञान की भी आवश्यकता होती है कि ऋण लेने वाली समिति के सदस्य अपने उत्तरदायित्व को कहा तक अनुभव करते है। वह सभा के ऋण लौटाने मे कैसे है, आदि आदि। इन बातो को जानने के लिए अधिकोष एक नक्शा तैयार करता है। इसमे हर सदस्य की चल तथा अचल सम्पत्ति, एव समिति की समस्त सम्पत्ति को दर्ज किया जाता है। ऋणो की वापसी मे नियामकता का ब्यौरा भी रहता है। जहा सदस्य-समितियो का उत्तरदायित्व असीमित होता है, वहा सदस्यो की कुल सम्पत्ति के तीसरे भाग तक, आमतौर पर ऋण मिलता है। जहा उत्तरदायित्व सीमित हो वहा सामूहिक उत्तरदायित्व अथवा उपरोक्त तीसरे भाग से जो भी कम मात्रा हो, वहा तक ऋण दिया जाना चाहिए। जहा केन्द्रीय अधिकोप अथवा अधिकोषण सघ न हो, और एक ही सहकारी शिखरीय अधिकोष सारे राज्य का हो, वहा इस प्रकार की तालिकाए अधिकोष की हर शाखा मे होनी चाहिए। सदस्य-सभाओ की इस प्रकार साख-निरीक्षण से अधिकोष सतर्क होकर काम कर सकता है। वह यह भी देख सकता है कि कौन समिति कितने तथा कितने समय के लिए ऋण की पात्र है। इतना ही नही, अधिकोष को चाहिए कि

जिन समितियो को ऋण दिया गया हो उनका अपने कर्मचारी समुदाय मे मे किसी योग्य व्यक्ति द्वारा समय-समय पर निरीक्षण करवाए, ताकि इस बात का पता रहे कि ऋण का ठीक उपयोग हो रहा है या नही, और कही धन का दुरुपयोग तो नही हो रहा।

हर ऋण एक निर्दिष्ट नमूने के फार्म पर लिखे प्रार्थना-पत्र पर विचारणीय होना चाहिए, जिसमे ऋण किस काम के लिए चाहिए, कितना चाहिए, कितनी किश्तो मे वापस होगा, कितना पहले ऋण है, महत्तम ऋण-सीमा क्या है, समिति का प्राप्तव्य ऋण कितना है, अवधि के अन्दर न प्राप्त होने वाला ऋण कितना है, आदि। बैंक अपने कर्मचारियो द्वारा समितियो का जो निरीक्षण कराए उसमे हिसाब के पक्ष पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बैंक के लिए हिसाब पर ध्यान देने की जितनी आवश्यकता होती है उसके लिए अधिकोष को विभाग पर अत्यधिक आश्रित नही रहना चाहिए।

केन्द्रीय अधिकोषो को इसमे साधारणतया यह आपत्ति होती है कि उनके पास इतने कर्मचारी रखने के लिए धन नहीं होता कि यह सब काम हो सके, परन्तु सूझ-बूझ से काम किया जाय तो इस कार्य के लिए न तो उनको बहुत स्टाफ की आवश्यकता होती है, और न अधिक धन की। यह कार्य इतना आवश्यक है कि यदि यह न किया जाय तो अधिकोष को बहुत हानि की सभावना रहती है।

जिस तरह केन्द्रीय अधिकोष को आवश्यक है कि सदस्य-समितियो की देख-रेख रखे, इसी तरह राज्य के सहकारी बैंक के लिए सदस्य केन्द्रीय अधिकोषो की निगरानी करना आवश्यक है। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि इस देख-रेख के बाद विभाग का कोई उत्तरदायित्व नही रहता। निरीक्षण तथा हिसाब की जाच अब तो विभाग के कानूनी कर्तव्य बन गये है और उनके लिए यह करना अनिवार्य तथा आवश्यक है।

अवशेष पत्र—हर केन्द्रीय अधिकोष को अपना बेलेन्स-शीट हर वर्ष छपवाना पडता है। यह अवशेष-पत्र सहकारी वर्ष की समाप्ति पर अर्थात् ३० जून के पश्चात् तैयार होता है। इसकी एक प्रति रजिस्ट्रार को भेजनी आवश्यक होती है। परन्तु इसकी प्रति सदस्यो, और यदि सभव हो सके तो अमानतदारो को भी भेजनी चाहिए। इस अवशेष-पत्र पर आडिटर का प्रमाण-पत्र होता है और

अधिकोष के मैनेजर, अकाउटेंट तथा तीन डायरेक्टरो के उस पर हस्ताक्षर होते है। अवशेष-पत्र मे यह स्पष्ट होगा कि अधिकोष की सम्पत्ति व दायित्व कितने है। भाग-मूल्य कितना चुकाया जा चुका है। स्थायी सम्पत्ति का मूल्य क्या है। कुल कितने हिस्से है। कितने ऋण दातव्य है और कितने प्रातव्य है, आदि।

वार्षिक व त्रैमासिक तालिकाएं—यह जानने के लिए अधिकोष की परिस्थिति किस तरह की है और वह कैसे उन्नति कर रहा है, विभाग केन्द्रीय अधिकोपो से वार्षिक व त्रैमासिक तालिकाए मगवाता है। इन तालिकाओ मे सम्पत्ति व उत्तरदायित्वो के अतिरिक्त प्राप्तव्य ऋणो का भी व्योरा रहता है तथा उसकी प्रवाहशील पूजी कितनी है और ठीक ढग से प्रयुक्त होती है या नही। इन तालिकाओ से विभाग केन्द्रीय अधिकोपो की गतिविधि से परिचित रहता है और उन्हे यथासमय उपयुक्त मत्रणा तथा सहायता दे सकता है।

सचालक-परिषद—हर केन्द्रीय अधिकोप के प्रवन्ध के लिए एक सचालक परिषद निर्वाचिन द्वारा नियुक्त की जाती है। इस निर्वाचन मे अधिकोष के हिस्सेदार भाग लेते है। इन अधिकोपो मे कई वार प्रधान चुना जाता है और कई वार सरकारी कर्मचारी उपनियमानुसार मनोनीत होता है। कई राज्यो मे राज्य के सहकारी अधिकोष का प्रधान रजिस्ट्रार और जिले के केन्द्रीय अधिकोपो का प्रधान अपने पद के नाते डिप्टी-कमिश्नर होता है। सचालक-परिषद के सदस्यो की सख्या परिस्थिति के अनुसार रखी जाती है। और फिर सचालक-परिषद कार्य चलाने के लिए अपने आपको उपसमितियो मे विभक्त कर लेती है। दैनिक प्रवन्ध सम्बन्धी कार्य के लिए भी समिति वना ली जाती है। यह समिति थोडे व्यय से केन्द्रीय अधिकोप का दिन-प्रतिदिन का कार्य चला लेती है। जहा केन्द्रीय अधिकोप के सदस्य समितिया व व्यक्ति दोनो होते है, वहा सचालक-परिषद मे व्यक्ति तथा सभा-प्रतिनिधियो की सख्या निर्धारित करदी जाती है। ताकि अधिकोप पर व्यक्तियो का ही अधिकार न हो जाय।

हरएक सहकारी समिति की तरह इनमे भी पूर्ण अधिकार तो साधारण अधिवेशन को ही होते है। हर सदस्य का एक ही मत होता है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि अधिवेशन के कार्य के सम्बन्ध मे ग्रामीण साख समिति के वडे ही मूल्यवान प्रस्ताव है। उन प्रस्तावो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

राज्य सहकारी बैंक

सदस्यता—इन अधिकोषो के सदस्य क्षेत्र के सभी केन्द्रीय अधिकोष होने चाहिए। वह प्रारम्भिक सहकारी समितिया भी सदस्य बन सकती है जिनका लेन-देन सीधा राज्य-सहकारी बैंक से हो। जहा राज्य-सहकारी अधिकोष का सीधा सबध प्रारम्भिक सहकारी समितियो से हो, वहा दूरस्थ समितियो की सेवा के लिए उक्त अधिकोष की शाखाए होनी चाहिए। व्यक्तिगत सदस्यो की सख्या बहुत ही सीमित होनी चाहिए।

सचालन—यद्यपि यह एक साधारण परिणाम मालूम देता है कि राज्य के भाग की मात्रा अधिक (५१%) होने पर राज्य को मत प्रदान का अधिकार बहुमत मे होना चाहिए। परन्तु साधारणतया कमेटी का प्रस्ताव यह है कि सचालको मे $\frac{1}{3}$ से अधिक राज्य के प्रतिनिधि नही होने चाहिए।

कहना न होगा कि इस प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर गैर-सरकारी हल्को मे बहुत विरोध हुआ। और वह चाहते थे कि सरकार का एक मनुष्य—एक मत—के आधार पर एक ही मत होना चाहिए। आखिर रजिस्ट्रार-सम्मेलन ने यह निर्णय किया है कि सरकारी सचालको की सख्या ३ या कुल का $\frac{1}{3}$ होनी चाहिए।

कमेटी की यह भी सिफारिश है कि कुछ मामलो मे सरकार को ऐसे अधिकार रहने चाहिए कि वह सचालक परिषद के निर्णय को बदल सकें। यह अधिकार मोटे तौर पर निम्न विषयो पर होने चाहिए—

(१) वित्त सम्बन्धी नीतियो का ठीक होना,

(२) ऋण सम्बन्धी नीति के उद्देश्य व ध्येय,

राज्य के प्रतिनिधियो मे रजिस्ट्रार तथा वित्त विभाग के अधिकारी व अधिकोषण विशेषज्ञ होने चाहिए। अधिकोष के प्रबन्ध-सचालक (मैनेजिग-डायरेक्टर) की नियुक्ति पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, और इसकी नियुक्ति पर राज्य की स्वीकृति आवश्यक रहनी चाहिए।

भाग-धन—राज्य द्वारा हिस्सो के लिये जाने के अतिरिक्त दो और भाग-धन जुटाने के साधन सुझाये गए है, यथा—सदस्य केन्द्रीय अधिकोषो तथा सहकारी समितियो को प्रेरित करना कि वह अपने भाग-धन के एक निर्दिष्ट भाग के मूल्य

के हिस्से खरीदे और सदस्यो को ऋण-प्राप्त करने के अधिकार को उनके भाग-धन से सम्बन्धित किया जाय। परन्तु इन उपायो को प्रयोग करते वक्त इस बात का ध्यान रखा जाय कि कही इस आन्दोलन की उदार नीतियो को हानि तो नही पहुच रही। राज्य सहकारी अधिकोषो के उपनियमो मे यह प्रावधान रहना चाहिए कि राज्य सहकारी अधिकोष केन्द्रीय सहकारी अधिकोषो मे भाग ले सके।

ऋण-कार्य—ऋण देने मे प्राथमिकता कृषि सम्बन्धी कार्यों के लिए दी जानी चाहिए। व्यक्तियो तथा व्यापारियो को ऋण देना समाप्त ही कर देना चाहिए, या उनकी स्थायी अमानतो की जमानत पर बहुत ही कम मात्रा मे दिया जाना चाहिए। अल्पकालीन-ऋण के लिए प्राप्त धन-राशि को दीर्घकाल के ऋणो के लिए प्रयुक्त नही करना चाहिए।

परिणामस्वरूप इन अधिकोषो को आन्दोलन के मूल स्तभ के रूप मे काम करना चाहिए। इनके सदस्य अधिकोषो से पर्याप्त घनिष्ठ सम्बन्ध होने चाहिए। और सदस्य सस्थाओ के अतिरिक्त कोष इनके पास जमा रहने चाहिए।

केन्द्रीय भूमि-बन्धक अधिकोष

साधारण—कमेटी का प्रस्ताव यह है कि हर राज्य मे एक इस प्रकार का अधिकोष होना चाहिए, और हर राज्य को चाहिए कि वह अपने रैयतदारी व काश्तकारी सम्बन्धी कानूनो को पडताल करके सशोधित करे ताकि भूमि-बन्धक अधिकोषो का कार्य सफलतापूर्वक चलता रहे। इनकी रजिस्ट्री आदि करने का कार्य सादा, सुगम तथा सस्ता हो।

भाग-धन—सरकार को इनके भाग-धन मे कम से कम ५१ प्रतिशत लगाना चाहिए। और सभवत इनमे सरकार को और भी अधिक भाग लेने पडे क्योकि आवश्यकता अधिक है। भूमि-सुधार की योजनाएँ इतनी व्यापक है कि इनके लिए काफी धन चाहिए। और साथ उक्त भू-सुधार योजनाए केन्द्रीय तथा प्रारम्भिक भूमि-बन्धक अधिकोषो के बिना सफल नही हो सकेगी। केन्द्रीय भूमि-बन्धक अधिकोषो के उपनियमो मे यह प्रावधान रखना ठीक रहेगा कि वह प्रारभिक अधिकोषो मे भाग ले सके।

ऋण-नीति मे परिवर्तन—आज तक ऋणो की बहुसख्या पुराने ऋणो

अथवा वन्धको की मुक्ति हेतु दी जाती थी। परन्तु अब यह आवश्यक हो गया है कि इन अधिकोषो की ऋण-दान नीति भू-सुधार योजना के पूर्णतया अनुकूल होनी चाहिए जिसमे बाध वनाना, कुए खोदना, पम्प प्राप्त करना, कृपि-यन्त्रो का क्रय आदि भी शामिल हो।

प्रारम्भिक अधिकोषो को मत्रणा दी जानी चाहिए कि वे विकासात्मक ऋणो को प्राथमिकता दे। ५०००) से अधिक ऋण भू-विकास कार्यो के सिवा अन्य किसी प्रयोजन के लिए नही दिया जाना चाहिए।

इसलिए कि ऋण-प्रदान कार्य का उत्पादन तथा विकास से सीधा सम्वन्ध रहे, प्रशासन मे भी कुछ सशोधन करने पडेगे, यथा—

(१) हर क्षेत्र के लोगो को इस वात का ज्ञान कराना कि ऋण-योजना क्या है और ऋण किस प्रकार प्राप्त हो सकते है।

(२) सम्वन्धित तथा उपयुक्त विभागो से पूर्ण ताल-मेल।

(३) जहा भूमि-वन्धक अधिकोषो मे आवश्यक हो कर्मचारी समुदाय मे वृद्धि की जाय, विशेषत पर्यवेक्षण के लिए। इस कर्मचारीवर्ग का भली प्रकार प्रशिक्षित होना वडा आवश्यक है।

(४) यह जरूरी है कि भू-सुधार के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो। यह भी आवश्यक होगा कि वन्धक भूमि के मूल्य का कुछ भाग ऋण-रूप मे देने के समय, मूल्य जो सुधार के पश्चात् हो, उसको ध्यान से रखना चाहिए। उसकी जमानत लेनी पडेगी कि यदि सुधार न हो तो जमानत जिम्मेदार होगी। यह जमानत सरकार को ही देनी उचित होगी।

(५) रुपया प्राप्ति मे देरी का कारण आमतौर पर अधिकार प्रलेख का प्रमाणीकरण होता है। शीघ्रता के लिए इसके लिए भी जमानत ली जा सकती है, जो अधिकार प्रलेख के प्रमाणित होने पर मुक्त हो जायगी। हर प्रारम्भिक भूमि-वन्धक अधिकोष के पास २५,०००) रु० का और शिखरीय अधिकोष के पास ५ लाख का गारटी फड होना चाहिए।

(६) यही अधिकोष सरकार के भू-सुधार हेतु दिये जाने वाले ऋणो की एजेसी होनी चाहिए।

(७) इन अधिकोषो के ऋण १५ से २० वर्ष तक के लिए आयोजित होने चाहिए।

(८) केन्द्रीय अधिकोषो को ऋणो के प्रयोजनो के अनुसार १५ से २० वर्ष के लिए डिबेचर जारी करने चाहिए ।

(६) राज्य की ओर से निम्न सहायताए मिलनी चाहिए —

(क) केन्द्रीय भूमि-बन्धक अधिकोषो के ऋण-पत्रो के मूलधन तथा व्याज की ज़मानत देना ;

(ख) भूमि के मूल्याकन तथा भू-सुधार योजनाओ के परीक्षण के लिए कर्मचारी वर्ग का प्रबन्ध ,

(ग) इनको अधिक धन प्राप्त करने की सुविधाए देना, जब तक कि वह पर्याप्त मात्रा मे बन्धक प्राप्त कर सकते हो और जिनकी जमानत पर ऋण-पत्र या डिबेचर जारी कर सके ,

(घ) स्टाम्प तथा प्रमाणीकरण रजिस्ट्रेशन शुल्क से छूट ;

(ङ) इन अधिकोषो के सुगमतापूर्वक सचालन के दृष्टिकोण से विशेष कानून बनाना, नियमो के साथ यह भी ध्यान रखना कि प्राप्तव्य-ऋण शीघ्र वसूल हो सके ,

(च) अविकसित क्षेत्रो मे ऐसे अधिकोषो को विशेष सहायता देनी चाहिए जिससे प्रशासनिक व्यय मे सहायता भी शामिल हो ।

केन्द्रीय सहकारी कोष

जिला स्तर पर कमेटी की राय है कि राज्य के शिखरीय अधिकोष की शाखा के स्थान केन्द्रीय अधिकोष की स्थापना श्रेयस्कर होगी । परन्तु कम विकसित क्षेत्रो मे राज्य के सहकारी अधिकोष की शाखा अधिक लाभप्रद रहेगी । परन्तु नीति का आधार यह होना चाहिए कि अन्त मे उक्त शाखा जिला केन्द्रीय अधिकोष का स्वरूप ग्रहण कर ले ।

जहा तक दीर्घकालीन ऋण का प्रश्न है कइयो की राय यह है कि जिला-स्तर पर यह कार्य भी केन्द्रीय सहकारी-अधिकोष ही करे । परन्तु मद्रास के अनुभव से यह सिद्ध है कि जब राज्य-स्तर पर केन्द्रीय भूमि बन्धक अधिकोष हो तो जिला-स्तर पर भी ऐसी सस्था का होना उपयुक्त है । परन्तु जब तक इस प्रकार के भूमि-बन्धक अधिकोष की स्थापना न हो, तब तक केन्द्रीय सहकारी-अधिकोष को एक पृथक् विभाग रखना चाहिए, जिससे वह केन्द्रीय भूमि-बन्धक अधिकोष के एजेण्ट के तौर पर काम करे । ऋण प्राप्त करने वाले केन्द्रीय

भूमि-बन्धक अधिकोष के सदस्य होने चाहिए। जब यह काम बढ जाय तो उक्त विभाग को शाखा मे परिवर्तित किया जा सकता है। परन्तु इसे केन्द्रीय सहकारी अधिकोष के भवन मे ही रहना चाहिए। जब यह कार्य और प्रगति कर जाय तो यही शाखा प्रारम्भिक भूमि-बन्धक अधिकोष मे बदल जायगी।

जो राज्य छोटे है, वहा राज्य के सहकारी अधिकोषो की शाखाए ही पर्याप्त होगी, केन्द्रीय अधिकोषो की स्थापना की आवश्यकता नही रहेगी।

कमेटी का मत है कि हर राज्य के अधिकोषण की पुष्टि हेतु योजना बनानी चाहिए। उन्होने केन्द्रीय सहकारी अधिकोष के महत्व पर बहुत जोर दिया है और आवश्यकतानुसार जिला जसे छोटे स्थान के लिए भी ऐसे बैक की स्थापना को भी आपत्तिजनक नही बताया। परन्तु सिफारिश यह है कि बहुत छोटी इकाइया नही होनी चाहिए। उनका कहना है कि प्रदत्त भाग-धन ३ लाख और कार्य-वाहक पू जी २०-२५ लाख होनी चाहिए। शासन को अधिकार होना चाहिए कि सचालक-परिषद के निर्णय जब कभी आवश्यकता हो बदल सके और परिषद मे बहुत ज्यादा सदस्य न हो। राज्य कर्मचारी प्रधान, नियम नही वरन् अपवाद रूप मे होना चाहिए। स्थानीय स्टेट बैंक का एजेण्ट अवश्य सचालक-परिषद पर मनोनीत होना चाहिए। केन्द्रीय अधिकोषो के उपनियमो मे यह नियम चाहिए कि वह प्रारभिक सहकारी समितियो मे भाग ले सके।

इन केन्द्रीय सहकारी अधिकोषो का प्रधान कार्य यह होना चाहिए कि कृषि साख सहकारी समितियो को ऋण दे। व्यक्तिगत किसानो की सदस्यता इन अधिकोषो मे केवल अन्तरिम काल के लिए होनी चाहिए।

नागरिक अधिकोष

इनके सम्बन्ध मे कमेटी के सुझाव यह है कि वह केवल उन्ही जगहो मे प्रारभिक सहकारी समितियो से ऋण का आदान-प्रदान करे जहा केन्द्रीय सहकारी अधिकोष या राज्य सहकारी अधिकोष की शाखा न हो, और वह भी ५ मील की परिधि मे। इनका अतिरिक्त-धन केन्द्रीय सहकारी अधिकोष या राज्य सहकारी अधिकोष मे जमा होना चाहिए।

इन सिफारिशो से यह बात तो प्रकट है कि सहकारी अधिकोषण के पुष्टि-करण की महत्ता पर उक्त कमेटी ने बडा जोर दिया है। और इसमे कोई सदेह नही कि बिना इस अग की पुष्टि के सहकारी आन्दोलन सफल नही हो सकेगा।

परन्तु यह एक विचारणीय प्रश्न है कि क्या शासन के ५१ प्रतिशत हिस्सो तथा शासन के बढते हुए नियन्त्रण से सहकारिता के जनतत्री आन्दोलन को वास्तविक पुष्टि मिल सकेगी या नही ? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या इन अधिकोषो को प्रारभिक अवस्था मे ही सहकारी समितियो से पर्याप्त काम मिल सकेगा जिससे वह स्वावलम्बी हो सके । शासन का इस प्रकार का भाग तथा नियत्रण उसी अवस्था मे आन्दोलन के लिए सहायक सिद्ध होगा जब कि शासन के कर्मचारी सहकारिता के सिद्धान्तो से पूर्णतया परिचित हो तथा उसके मूल भाव उनके हृदयगम होकर उनका एक विश्वास वन चुके हो। क्योकि सहकारिता का केन्द्र वस्तुत रजिस्ट्रार होता है, अतः रजिस्ट्रार की छाट व नियुक्ति वडे विचार से होनी चाहिए । उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति के उपरान्त उसे पर्याप्त प्रशिक्षण मिलना चाहिए और फिर उसका इसी पद पर काफी काल के लिए रहना बहुत ही आवश्यक है । यदि आज जनता मे सहकारी भावो से ओत-प्रोत व्यक्तियो का अभाव है तो कर्मचारी समुदाय मे यह अभाव और भी अधिक है । आन्दोलन मूलत जनता का आन्दोलन होने के कारण शासन का इतना अधिक भाग कुछ उपयुक्त नही दीखता । अत इसमे यदि रिजर्व बैंक के ही राज्य के स्थान पर भाग रखे जाय, सरकार की समस्त सहायता रिजर्व बैंक द्वारा जाय, उनके ही मनोनीत व्यक्ति प्रबन्धक-समितियो पर हो, तो सभवत अधिक व्यावहारिक होगा । इस तरह रिजर्व बैंक शनैः-शनै सहकारी अधिकोषण सस्थाओ को स्वावलम्बी बनाता चला जायगा ।

प्रारभिक दशा मे सहकारी समितियो से इन अधिकोषो को पर्याप्त काम नहीं मिल पायगा । और इन अधिकोषो को स्वावलम्बी बनाने के लिए इन्हे साधारण बैंकिग कार्य करने की छूट देनी पडेगी । परन्तु यह ठीक है कि केन्द्रीय अधिकोष यह कार्य कम से कम करे । इस कार्य के लिए नागरिक सहकारी अधिकोषो का एक जाल बिछाना पडेगा । यह सब नागरिक अधिकोष केन्द्रीय अधिकोषो के सदस्य होगे । इस तरह व्यापारी वर्ग जो शनै-शनै सहकारिता को अपनाता चला जायगा, इन अधिकोषो से सहायता प्राप्त कर सकेगा । कृषि सहायक कार्य को व्यापार से पूर्णतया पृथक् रखकर सफल नही किया जा सकता । यह बात तो अब सर्वमान्य है ही । अत. ज्यो-ज्यो व्यापार सहकारी क्षेत्र मे आता चला जायगा, इस तरह की बैंकिग की आवश्यकता बढती जायगी और व्यक्तियों

से पर्याप्त मात्रा मे धन सहकारी बैंक को प्राप्त हो सकेगा।

सहकारी अधिकोषण का आधार इस प्रकार निर्मित होगा कि आरभ मे ग्राम-स्तर पर प्रारभिक सहकारी समितिया होगी और नगर-स्तर पर नागरिक सहकारी अधिकोष होगे। इनसे ऊपर साधारणतया केन्द्रीय सहकारी अधिकोष होगे, जिनका आर्थिक ढाचा पर्याप्त पुष्ट होगा। अर्थात् जिनका प्रदत्त भाग-धन ३ लाख से कम न हो और कार्यवाहक पू जी २०-२५ लाख होगी। जहा राज्य छोटे हो वहा प्रारभिक स्तर के बाद सीधा राज्य सहकारी अधिकोष होगा। और जिला-स्तर पर राज्य सहकारी अधिकोष की अन्तरिम काल मे केवल शाखाए होगी।

इन केन्द्रीय सहकारी अधिकोषो की सदस्यता से राज्य के सहकारी अधिकोष का निर्माण होना चाहिए। इन अधिकोषो मे व्यापार का कार्य जैसा कि गत महा-युद्ध मे होता रहा, नही होना चाहिए। वह कार्य व्यापार सम्बन्धी अथवा बहुद्देश्यीय सहकारी समिति के ही अधीन रहना चाहिए। विभाग का कार्य केवल मत्रणा, निरीक्षण तथा हिसाब की जाच रहना चाहिए। और भाग-धन तथा मनोनीत सदस्य रिजर्व तथा स्टेट अधिकोष द्वारा ही आने चाहिए।

यदि आन्दोलन को पुष्ट करने के साथ-साथ उसके जनतत्री गुण तथा सैद्धान्तिक पुष्टि का सरक्षण करना है तो उपरोक्त सुझाव अवश्य ही विचारणीय तथा प्रयोग मे लाने योग्य है।

: ९ :

बहुद्देश्यीय-सहकारिता

इगलैंड की प्रसिद्ध औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात समस्त कार्यों मे एक नई पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ। हर काम मे विशेषता आने लगी। यो तो पहले भी ऐसा क्रम था जैसा कि भारत के वर्ण-व्यवस्था द्वारा कार्य-विभाजन से प्रकट है, परन्तु उपरोक्त क्रान्ति के पश्चात उद्योग तथा व्यापार मे और भी विशिष्टता

आने लगी। इसी कार्य-विभाजन की पद्धति का प्रभाव सहकारिता के आदोलन पर भी स्वाभाविक था। यदि इस आन्दोलन के मूल पर विचार किया जाय तो यह प्रत्यक्ष दीखता है कि यह आन्दोलन प्रधानतया तो ग्रामीणो का है, जिनकी छोटी-छोटी सामूहिक आवश्यकताए होती है। मानव का शरीर अपने पोषण के लिए कई वस्तुओ का गाहक होता है। और ग्राम मे इसकी इन आवश्यकताओ को पृथक्-पृथक् दूकानो द्वारा पूरा नही किया जा सकता। पृथक्-पृथक् दूकाने तो नगरो के जीवन के नखरे है। अत ऐसे आन्दोलन को सकीर्ण तथा सकुचित करके एकोद्देश्यीय बनाने का प्रयास इस आन्दोलन के मूल स्वभाव से ही विपरीत मालूम देता है। ऋण के लिए पृथक्, व्यापार के लिए पृथक्, कृषि के लिए पृथक् तथा उद्योग के लिए पृथक् समिति का निर्माण हर ग्राम के लिए करना सहकारी भावनाओ से खेलनामात्र है। इतना ही नही, जब यह सकीर्णता वढी तो एक-एक ग्राम मे ब्राह्मणो, राजपूतो, भीवरो व चमारो आदि की पृथक्-पृथक् समितियो का निर्माण होने लगा। पर यह सब समितिया ऋण देने का ही कार्य करती थी। इस सम्बन्ध मे अब भी पृथक्-पृथक् विचार है। रूढिवादियो का कथन है कि यह समितिया पृथक्-पृथक् होनी चाहिए और यह पृथकता केन्द्रीय समितियो तथा सघो तक चलती है। इस पद्धति का फल यह होता है कि एक ध्येय वाली सहकारी समितियो को पर्याप्त काम नही मिलता और सहकारी समितिया पुष्ट तथा शक्तिशाली नही हो पाती। साथ ही ग्रामीण की एक प्रकार की आवश्यकता-पूर्ति का प्रयत्न करने वाली समिति ग्रामीण को शेष आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियो की शरण लेने को मजबूर करती है। इसका फल यह होता है कि सामूहिक रूप से ग्रामीण सहकारिता के लाभो का अनुभव नही कर सकता। शाही कृषि कमीशन (रायल कमीशन और एग्रीकल्चर) ने सन् १९२८ मे रूढिवादी पक्ष का समर्थन करते हुए एकोद्देश्यीय सहकारी समितियो को उत्तम रास्ता वतलाया था, परन्तु भारतीय रिजर्व बैंक के कृषि-विभाग ने अपने पत्रक मे ही अनेक उद्देश्यो वाली सहकारिता का समर्थन किया। इसमे कुछ प्रगति हुई और सन् १९५२ मे उनकी परिस्थिति यह थी—

कुल सख्या	३९,९३०
सदस्यता	२१,४२,९०५
चालू धन	१३३३,७१ लाख रुपये

वस्तु-क्रय	२२६०,९६ लाख रुपये
वस्तु-विक्रय	२७८५,९६ " "

उपरोक्त वहुद्देश्यीय सहकारी समितियो मे से २४,३०२ केवल उत्तर प्रदेश मे ही थी। यह गत विश्व-युद्ध मे अधिक वनी जवकि कट्रोल का समय था और बहुत-सी वस्तुओ का वितरण कतिपय राज्यो मे सहकारी समितियो द्वारा कराने का प्रयोग किया गया था। परन्तु कट्रोल वाली वस्तुओ को वितरण करने वाली तथा राज्य की सहायता पर अवलम्बित यह समितिया वहुत समय तक सफल नही रह सकी। जव राज्य का सरक्षण हटा या नियत्रण समाप्त हुआ, तो यह समितिया भी घाटे मे चली गई और यदि कुछ राज्यो मे कपडे का घाटा पूरा करने के लिए राज्य आर्थिक सहायता न देता तो सभवत. वहुत-सी ऐसी समितियो को दिवालिया करार देना पडता। ऐसी परिस्थिति यह वतलाती है कि वहुद्देश्यीय सहकारिता कोई सफल पद्धति नही। इसका कारण तो यह रहा कि हमने इसके सम्वन्ध मे कोई निश्चित योजना नही वनाई और न इसको भली प्रकार समझा ही। पूर्व इसके कि वहुद्देश्यीय के स्वरूप का विशद विश्लेपण किया जाय, यह आवश्यक है कि इस विचारशैली के विकास के इतिहास का सक्षेप से विवरण प्रस्तुत किया जाय।

सहयोग का असली ध्येय तो यही है कि काश्तकार, मजदूर और कम पूजी वाले लोगो की वेहतरी हो। अभी तक जो समितिया काम करती है, उन्होने एक ही काम हाथ मे लिया यथा—ऋण व वचत, खाद या वीज, समिति या क्रय-विक्रय समिति का काम। परन्तु ऐसी समितिया उन लोगो की सव आवश्यकताओ को पूरा नही कर सकती। इसलिए उनको वहुत-सी दूसरी आवश्यकताओ के लिए सहकारी समितियो के अतिरिक्त अन्य दरवाजे खटखटाने पडते है और यह भी एक कारण रहा है कि लोग इतने समय के वाद भी इस आन्दोलन के असली अर्थो को नही समझ सके हैं।

काश्तकार, मजदूर आदि की दशा वेहतर वनाने के लिए यह जरूरी है कि उनकी क्रयशक्ति व जीवन-स्तर को उन्नत किया जाय। ऐसा करने के लिए पहले तो उनकी पैदावार वढाने के उपाय प्रयोग मे लाने चाहिए। दूसरे उनकी पैदावार के अच्छे दाम दिलाने का प्रवन्ध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त

जो कि वहुद्देश्यीय समिति की दशा मे इस कारण पूरे नही होते कि उसके लिए कार्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत रखना पडता है। शाही कृषि-कमीशन की रिपोर्ट के समय १९२६ मे साधारण जनमत एकोद्देश्यीय समितियो के पक्ष मे था। इसी क्रम मे उत्तरदायित्व के प्रश्न पर भी मतभेद है। एकोद्देश्यीय समिति के समर्थको का कहना है कि समिति का उत्तरदायित्व सहयोग के नियमो के अनुसार असीमित होना चाहिए और वहुद्देश्यीय के समर्थक सीमित उत्तरदायित्व के समर्थक है। उनका कहना है कि यदि उतरदायित्व सीमित होता तो वहुत लोग समितियो के सदस्य बनते।

कुछ लोगो की राय है कि वहुद्देश्यीय समिति, जो ऋण आदान-प्रदान का काम भी करती है, यदि वह इस योग्य है कि अपनी आवश्यकताओ के अनुसार समिति उत्तरदायित्व के आधार पर रुपया स्वय इकट्ठा कर सके तो ऐसी दशा मे बहुत कम डर रह जाता है। यदि ऐसा नही है तो यह अधिक उचित है कि ऋण सबधी समिति पृथक् हो और बहुद्देश्यीय पृथक्।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता हे कि चूकि बहुद्देश्यीय समिति का काम दूसरी समितियो की अपेक्षा पेचीदा तथा कठिन होता है, इसलिए कई वार उसके काम मे जो त्रुटिया पैदा हो जाती है, उनका शीघ्र पता नही लग सकता और जब लगता है उस समय समिति की दशा बहुत खराब हो चुकी होती है। दूसरे सदस्यो का समिति के काम मे भाग लेना वहुत कम रह जाता है जो कि सहकारी भावना को शक्तिशाली बनाने के लिए परमावश्यक है। परन्तु वैसे सदस्यो का वहुद्देश्यीय समिति मे मेल-जोल अधिक नही होता। कुछ लोगो का यह भी विचार है कि बहुद्देश्यीय की दशा मे सहकारी विभाग का दखल वहुत रहता है और इससे हानि भी होती है।

उपरोक्त आपत्तिया उन लोगो की ओर से है जिन्हे सहयोग का अनुभव है और जिन्होने इस ओर बहुत समय लगाया है, किन्तु यह आपत्तिया ऐसी नही जिनका निराकरण न किया जा सके। यह ठीक है कि वहुद्देश्यीय समितिया हर जगह और हर दशा मे स्थापित नही की जा सकती। स्थानीय परिस्थितियो और आवश्यकताओ के अनुसार ही आसानी से खोली जा सकती है, और उसके सिद्धातो को भी समझाया जा सकता है।,

परन्तु यदि लोगो को अच्छी प्रकार वहुद्देश्यीय समिति के सिद्धान्त व कार्य-

क्रम समझाए जाय और पर्याप्त प्रचार किया जाय तो लोग यह सब समझ सकते है और काम करने को भी तैयार होगे। वैसे तो जब प्रारम्भ मे ऋण-सम्बन्धी समितिया स्थापित की गई थी तो लोगो को समझने मे काफी समय लगा और लोग उन समितियो को सदेह की दृष्टि से देखते थे। परन्तु धीरे-धीरे लोग उनके लाभ समझने लगे और ये समितिया खासी सफल हुई।

ऋण-सम्बन्धी समिति का ध्येय सदस्यो को ऋण से मुक्त करना होता है। और यह समाप्त भी हो सकता है। फिर समिति की पूजी को लाभप्रद काम पर लगाना एक समस्या बन जाती है। यह एक ऐसा काम है जिसमे स्थायी रुचि नही रहती। तभी तो श्री लोबो प्रभु ने गोरखपुर यू० पी० की ऋण-सम्बन्धी समितियो के बारे मे लिखा कि यह समितिया प्रारभ मे 'ए' क्लास होती है। दो वर्ष के वाद 'बी' और फिर 'सी', और फिर इनकी समाप्ति हो जाती है।

हमारे ग्राम विखरे हुए है। एक उद्देश्य के लिए पर्याप्त सख्या मे सदस्य नही मिल सकते। पूजी इकट्ठी नही होती, और वैतनिक कर्मचारी रखने के लिए पर्याप्त धन व आय नही होती। इसी कारण एकोद्देश्यीय समितिया आन्दोलन को जागरूक तथा सजीव वनाने मे समर्थ न हो सकी। तभी तो सहकारी योजना व पचवर्षीय योजना ने इस बात पर जोर दिया कि बहुद्देश्यीय सहकारी समितियो का प्रचलन किया जाय। साधारण ग्रामीण अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न जगह नही जा सकते और न ही भिन्न-भिन्न कामो के लिए रुपया जुटा सकते है।

इस आन्दोलन का अभिप्राय तो लोगो मे हर जगह फैलने तथा हर प्रकार से उनको उन्नत करने का है। यह तभी हो सकता है जबकि यह आन्दोलन लोगो को उनकी आवश्यकताओ की सब प्रकार की वस्तुओ को उपलब्ध कराने मे समर्थ हो और उनकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले।

अतः प्रकट है कि शाही कृषि कमीशन के समय लोग एकोद्देश्यीय समितियो के पक्ष मे थे, लेकिन थोडे ही समय के बाद लोग बहुद्देश्यीय समितियो के पक्ष मे होने प्रारभ हो गये। और अब तो कुछ समय से विचारधारा बहुद्देश्यीय के पक्ष मे है। रिजर्व बैंक के कृषि-विभाग ने १९३७ मे इनके पक्ष मे राय दी। और १९३९ मे रजिस्ट्रार सम्मेलन ने भी अपने सुझाव दिये कि प्रान्तो मे बहुद्देश्यीय समितियो का प्रयोग प्रारभ करना चाहिए। सन् १९४५ मे अकाल-कमीशन तथा

कई विशेषज्ञो ने भी बहुद्देश्यीय आन्दोलन का समर्थन किया है। रायला सीमा सहकारी जाच समिति (१९४६) ने भी बहुद्देश्यीय समितियो के प्रचलन पर जोर दिया है।

इतना ही नही ग्रामीण ऋण अधीक्षण समिति ने भी सहकारी आन्दोलन की इस मौलिक कमजोरी को पहचाना और एक एकीकृत कार्य-पद्धति की रूप-रेखा बनाई। उन्होने सफलता के लिए निम्न परिस्थितिया बतलाई है—

"सहकारी ऋण के पुनर्गठन के लिए जो उपाय इस समय तक सोचे गए हैं या प्रयोग मे लाए गए है उनका वर्णन यू हो सकता है कि वह ऋण सम्बन्धी सगठन की अन्दरूनी निर्बलताओ को हटाने के लिए ही थे। उनमे नागरिक व्यापार तथा वित्त सम्बन्धी परिस्थितियो द्वारा उत्पन्न कुव्यवस्थाओ का विचार तो दूर रहा, ग्रामीण सगठन के समूचे ढाचे की निर्बलताओ का ध्यान भी नही रखा गया। इसलिए सहकारिता मे किये गये प्राय सारे प्रयत्न निर्बल को सबल के विरुद्ध सगठित करने मे विफल रहे।

इस प्रकार दो अर्थ-नीतियो की कुव्यवस्थाओ को ठीक करने के लिए पहले प्रयत्न करने के स्थान पर प्रयास बचत, विकसित जीवन तथा बहुद्देश्यीय कार्य की ओर ही रहा। मैदान इस तरह सबल और निर्बल के दरम्यान द्वन्द्व के लिए साफ हो गया, जहा खेल के नियम अधिकतर सबल के ही पक्ष मे थे। इसलिए पहला काम इस अवस्था को दुरुस्त करने का है। दूसरे शब्दो मे ऐसी परिस्थितिया लानी पडेगी जिनमे सहकारिता सफलता से कार्य कर सके। सचालन की कोई विवेचना उस समय तक लाभप्रद नही होगी जब तक कि यह परिस्थितिया पहले पैदा न की जाय। सहकारिता के आगे दो बातो मे से एक का वरण करने की ही छूट रह गई है कि या तो वह अनिश्चित काल तक अपनी सहायता करने मे असमर्थता की दशा मे चलती रहे या ऐसी सहायता स्वीकार करे जिससे कि न केवल वह अपनी ही सहायता कर सके वरन् उसे बाहर से किसी सहायता की आवश्यकता न रहे। इस सगठित व एकीकृत सहकारी कार्य पद्धति के उक्त कमेटी ने तीन मौलिक अग बताए है—

(क) विभिन्न स्तरो पर राज्य की साझेदारी,

(ख) ऋण साख तथा अन्य आर्थिक कार्यो यथा व्यापार व निर्माण मे पूर्ण ताल-मेल और सहयोग।

(ग) पर्याप्त मात्रा मे कार्य-कुशल, जनता की आवश्यकताओ को पूर्ति मे रुचि रखने वाले तथा भली प्रकार प्रशिक्षित कर्मचारीवर्ग की नियुक्ति।

इस अध्याय मे हमारा सम्बन्ध केवल सुझाव स० २ से ही है। इसके सम्बन्ध मे अधिक विश्लेषण करते हुए उनका यह सुझाव है कि किसान व मजदूर की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु निर्माण, वस्तु क्रय-विक्रय, दुग्धोत्पादन, दुग्ध क्रय-विक्रय, पशुवश-वृद्धि तथा ग्रामोद्योगादि के कार्यो को सहकारिता द्वारा पूरा किया गया।

उपरोक्त सक्षिप्त विवरण से इतना तो प्रकट ही है कि केवल ऋण पक्ष की ओर ध्यान देने वाली एकागी सहकारिता सफल नही हो सकती और न ही एक दूसरे अग से पृथक् असम्बद्ध सकीर्ण सहकारिता ही सफल हो सकती है। परन्तु इसमे भी सन्देह नही कि आज तक बहुद्देश्यीय सहकारिता का ध्येय भी बडा ही सकीर्ण रहा है। कट्रोल के दिनो वस्तु क्रय-विक्रय कार्य को ही आमतौर पर बहुद्देश्यीय कार्य कहा जाता रहा। हालाकि यह कार्य का एक पक्ष है। जब तक हम बहुद्देश्यीय कार्य का मूर्त-रूप हृदय मे अकित नही कर पाते, तब तक इस कार्य की सार्थकता अथवा सफलता को नही आका जा सकता। यदि हम बहुद्देश्यीय सहकारी समिति का विचार ही सकीर्ण करदे तो वह शब्दो के मूलार्थ के ही विपरीत हो जायगी।

सहकारिता एक पूर्णतया मानवीय कार्य-पद्धति है। इसमे न तो व्यक्ति पूर्णतया समाज मे विलीन हो जाता है और न ही उसको इतना शक्तिशाली होने दिया जाता है कि समाज का शोषण कर सके। वह सर्वदा अपनी शक्ति समाज की शक्ति मे ही समझने लगता है। इस प्रकार सहकारिता व्यक्ति की बहुमुखी आर्थिक व सामाजिक प्रवृत्तियो के समाजीकरण का प्रयास है। अत हमे पहले मोटे तौर पर यह निश्चय करना पडेगा कि हमारी समाज की इकाई क्या हो। हम आमतौर पर 'ग्राम' को इकाई कह देते है। परन्तु भारत मे ग्राम के शब्द से कोई एक-सी धारणा नही होती, क्योकि एक या दो घरो से लेकर १०,००० की जनसंख्या तक हमे ग्राम मिलते है। ऐसी अविकसित तथा अनिश्चित धारणा से किसी भी आर्थिक कार्य का योजना-सम्पन्न ढग से होना कठिन है। अतः पहले हमे ग्रामीण जनता की इकाई का मान नियत कर लेना चाहिए। यह मान ग्राम या ग्राम-समूह से न होकर जनसख्या

मे होना चाहिए। जनसख्या का मान परिस्थितियो के अनुसार कम-ज्यादा हो सकता है।

फिर इस प्रारभिक इकाई की बहुमुखी आर्थिक विकास की योजना बनाई जानी चाहिए। जिस प्रकार प्रबन्ध सम्बन्धी योजना पचायते बनाती है, उसी प्रकार आर्थिक योजना बनाने का उत्तरदायित्व उनपर होना चाहिए जिनका कि उसमे आर्थिक हित या स्वत्व भी हो। क्योकि अपने व्यक्तिगत आर्थिक लाभालाभ की चिन्ता के बिना सब लोग कार्य मे पूर्ण रुचि नही रखते। इसलिए हर ऐसी इकाई के लिए एक बहुद्देश्यीय सहकारी समिति सगठित हो जिसमे सभवत क्षेत्र के सब परिवार सदस्य हो। हिस्से का मूल्य यथावश्यकता १०) रु० से १००) तक हो सकता है। समिति के रजिस्टर हो जाने के पश्चात् कार्यारभ करने से पूर्व समिति की प्रथम कार्यकारिणी समिति को चाहिए कि विभाग की मत्रणा से उक्त क्षेत्र के विकास के लिए एक योजना पूर्ण सर्वेक्षण के बाद बनाये। सर्वेक्षण मे हर समिति को क्षेत्र के सभवत निम्न आकडे एकत्रित करने चाहिए —

१ क्षेत्र की जनसख्या, बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष के ब्योरे सहित,
२ क्षेत्र की भूमि—वन, बजर, घासवाली, बारानी व नहरी आदि के ब्योरे सहित ;
३ क्षेत्र मे कच्चा माल तथा मूल्यवान लकडी आदि जो पैदा होती हो ,
४. अन्नोत्पादन का ब्योरा ,
५ ग्रामोद्योगो का ब्योरा, उनमे जो आदमी जीविकोपार्जन करते हो आदि के ब्योरे सहित ,
६ ग्रामीणो के ऋणो की सूची, प्रयोजनो सहित ,
७ पशु-सख्या, ब्योरे सहित ,
८ ब्याज की दर
९ जनता की आवश्यकताए जो उनके जीवन के लिए अत्यावश्यक हो।

सर्वेक्षण द्वारा उपलब्ध इन आकडो से ही योजना बनाने मे सहायता मिल सकेगी। कृषि मे क्या-क्या सुधार तथा उन्नति हो सकती है , कितनी जनता को कृषि के व्यवसाय से पूर्ण काम मिलता है , कितने व्यक्ति पूर्णतया उद्योगादि मे लगाने पडेंगे , ऋण के लिए कितना प्रबन्ध चाहिए , वस्तु क्रय-विक्रय का कितना प्रबन्ध चाहिए , भण्डारो की कितनी आवश्यकता है , इस समस्त कार्य के लिए

कितनी धन-राशि चाहिए, उसका प्रबन्ध किस प्रकार होगा—आदि प्रश्न है जिनको समक्ष रखकर ही एक एकीकृत तथा शृखला-बद्ध योजना बनाई जा सकती है। यह कार्य ही परमावश्यक है और इसी कार्य से सहकारी कर्मचारी-वर्ग की योग्यता का अनुमान हो सकता है। जब यह योजना बन जाय तो कार्य-कारिणी अथवा प्रबन्धक समिति को विभिन्न समितियो मे विभक्त हो जाना चाहिए, यथा—प्रशासन-समिति, ऋण-समिति, उद्योग-समिति, व्यापार-समिति, आदि-आदि। प्रत्येक समिति को अपने-अपने कार्य को योजनानुसार अग्रसर करना चाहिए और विभाग के कर्मचारियो को भी सहकारिता के इस सामूहिक रूप को विकसित तथा पुष्ट करने मे पूरा प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार की बहुद्देश्यीय सहकारी समिति जब मूल मे होगी तभी सहकारिता एक समूचे, समग्र तथा एकीकृत रूप मे विकसित होगी। इस प्रकार की बहुद्देश्यीय सहकारी समिति के विभिन्न अगो का सगठन तथा आयोजन उसी प्रकार होना चाहिए जैसे कि विभिन्न अध्यायो मे उनके सम्बन्ध मे लिखा जा चुका है। यदि लगभग ५००० जनसख्या के लिए इस प्रकार की बहुद्देश्यीय सहकारी समिति बनाई जाय तो उसके आय-व्यय का अनुमान निम्नरूपेण किया जा सकता है—

आय

१.	आयात, निर्यात, अर्ध थोक व्यापार पर ६ २५% दर से लगभग १ लाख के व्यापार का मुनाफा, यहा एक व्यक्ति का एक वर्ष का व्यापार २०) रु० आका गया है—	६२००)
२	नकद आय पैदा करने वाली फसलो के व्यापार तथा उद्योग-धधो की बिक्री द्वारा आय—	६०००)
३	१०,०००) रु० के लगभग हर वक्त रहने वाले ऋण का ब्याज दर ६% प्रति वर्ष—	६००)
४	फल, दूध, घी तथा उद्योग विभाग की आय—	१०००)
	कुल योग रु०	१३,८००)

व्यय

१	मत्री २००) रु० वेतन पर	२४००)
२	क्लर्क ८०) रु० वेतन पर	९६०)
३	स्टोरकीपर (भडारी) ६०) वेतन पर	७२०)

४	विक्रेता ६०) रु० वेतन पर	७२०)
५	दो चपरासी ४०) रु० वेतन पर	९६०)
६.	सामान स्टेशनरी आदि	२०००)
७	१०% के दर लाभाश	२०००)
८	२०,०००) रु० की सीमा से सुरक्षित कोप	१०००)
९	सहायता कोष	१०००)
		कुल योग रु० ११, ७६०)

यह अनुमान कोई ऐसा नही जो अतिशयोक्ति-पूर्ण हो। परन्तु यह सब काम करने के लिए हिस्से बेचकर यदि पर्याप्त धन जमा न हो सके तो सरकार को हिस्सो मे कुछ समय के लिए रुपया लगाना चाहिए। परन्तु सरकार द्वारा लगाया जाने वाला भाग-धन या तो रिजर्व बैंक द्वारा या सहकारी अधिकोषो के द्वारा आवे। क्योकि सीधे सरकार द्वारा आने पर तथा प्रबन्ध विभागो अथवा सहकारी विभाग के कर्मचारी सरकार के प्रतिनिधि प्रबन्धक समितियो मे होने से, लोकतन्त्रीय विचारो के अनुसार सहकारी भावना पनप नही सकती। सरकारी कर्मचारी अपना अधिकार तो बहुत समझते है परन्तु सहकारी भावना को उन्होने समझा नही होता। इसका फल होता है कि सरकारी सहायता का प्रथमावस्था मे दुरुपयोग और दूसरी मे वह सरकारी कर्मचारी स्वय तो छूट जाते है और शेष व्यक्तियो को गबन आदि के झझटो मे फसा देते है। यदि सहकारी अधिकोष भाग ले तो ऐसी परिस्थिति नही हो सकती। जब भाग अधिकोषो के द्वारा होगे तो धन की वापसी की जिम्मेदारी उनपर होगी जो समितियो की अपेक्षा यह उत्तरदायित्व अच्छी तरह निभा सकेगे। यदि किसी कारण-वश यह ठीक न समझा जाय तो यह हिस्से स्थानीय पचायत द्वारा आने चाहिए। सरकार पचायत को ऋण दे और पचायत का हिस्सा सहकारी समिति मे हो। इस तरह करने से प्रारम्भ से ही सारे ग्राम की सहकारी समिति मे उत्तरदायित्व-पूर्ण अभिरुचि हो जायगी। यह ऐसी चीज है कि इसके बिना सहकारिता पनप ही नही सकती।

इसमे सन्देह नही कि यदि इस प्रकार की प्रारम्भिक सहकारी समिति ने काम करना हो तो चालू धन एक लाख के लगभग चाहिए। यदि १००) रु० का

एक हिस्सा हो जिसका १०% पहले लिया जाय तो १००० परिवारो मे २००० हिस्से बिकना कठिन नही होना चाहिए। इस प्रकार समिति को २०,००० रु० प्राप्त होगा। कुल जिम्मेदारी २,००,००० रु० की होगी। अत अमानतो व ऋण द्वारा एक लाख रुपया व्यापार आदि हेतु जमा करना कठिन नही होगा। प्रारभ मे २०,००० रु० से जितनी कमी रह जायगी वह सरकार के पचायतो द्वारा आने वाले भागो से पूरी की जानी चाहिए। ज्यो-ज्यो हिस्से विकते जाय त्यों-त्यो सरकार का भाग लौटाया जा सकता है। और अन्त मे पचायत का भी १'००० रु० के लगभग रहना चाहिए। इस तरह कार्य के सम्पादन मे भी कोई कठिनाई नही रहेगी, क्योकि काम के सगठन का ढग जैसा कि पूर्व के अध्यायो मे वर्णित है, पूर्णतया व्यावहारिक होगा।

: १० :

सहकारिता और सामाजिक विकास

सामाजिक विकास के सम्बन्ध मे इतिहासवेत्ताओ तथा लेखको की विभिन्न धारणाए है। फ्रास के प्रसिद्ध लेखक रूसो का कहना है कि मानव स्वभाव से व्यक्ति ही है, और उसने अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने, भिन्न प्रकार की भूख को मिटाने तथा प्राणरक्षा के लिए सामाजिक क्षेत्र मे प्रवेश किया। उसने अपनी कुछेक स्वतत्रताओ का परित्याग करके उनके बदले दूसरे व्यक्तियो से सहायता प्राप्त की और इस प्रकार उसने सामाजिकता को अपनाया। उक्त लेखक ने अपनी पुस्तक का नाम भी 'सोशल काट्रेक्ट' अर्थात् सामाजिक सविदा रखा।

दूसरे विचारको का कहना है कि मानव स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है और वह समाज के विना रह ही नही सकता। मानव की परिभाषा करते हुए उन्होने लिखा कि "मानव एक सामाजिक प्राणी है।"

भारत के प्राचीन धर्मज्ञो ने तो ससार की उत्पत्ति का कारण यज्ञ बताया।

यज्ञ कर्म का अर्थ है सब प्राणियो का बहुत भला। अर्थात् ऐसे विचारको के अनुसार मानव का मूलभूत स्वभाव यज्ञ अर्थात् सामाजिकता है। एक और पक्ष है जिसका कहना है कि मूलत मानवमात्र एक है, और उस मौलिक एकता से स्नेह की भावना का प्रादुर्भाव होता है, जिसमे दूसरे के लिए त्याग करने से व्यक्ति को सुख होता है। इसी स्नेह से सहकार्य की भावना का उदय होता है।

यह सब विचारशैलिया एक साझे सत्य की ओर अवश्य सकेत करती है कि मानव के लिए सामाजिकता आवश्यक भी है और वाछित भी। जहा हम एक तरफ 'आदमखोर' व्यक्तियो को देखते है, वहा दूसरी तरफ वह भी व्यक्ति है जो दूसरे के हित बिना कुछ भी बदले मे लिए या लेने की आशा रखे, अपना जीवन तक भी बलिदान करने मे आनन्द का अनुभव करते है। अत अश रूप से दोनो पक्ष ही सत्य है। व्यक्ति समाज के हित के लिए अपनी परमावश्यक जरूरतो को भुला नही सकता। उसे रोटी चाहिए, कपडा चाहिए, घर चाहिए। कामवासना की तृप्ति के लिए उसे एक साथी को ढूढना पडता है। परन्तु यदि यह कहा जाय कि केवल एक सविदा के अधीन उसने समाज को अपनाया है तो यह पूर्णतया ठीक नही, क्योकि मनुष्य काफी मात्रा मे स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नही रह सकता। उसकी एक मानसिक भूख की तुष्टि समाज मे ही हो सकती है। प्रेम, सेवा, वात्सल्य आदि कई उसकी मानसिक वृत्तिया है जो जाकर समाज मे ही विकसित हो पाती है, और जिनके विकसित हुए बिना उसको एक मानसिक अवगुण्ठन, एक रुकावट, एक कमी अनुभव होती रहती है। अत प्रकट है कि मनुष्य प्रारभिक दशा मे स्वभाव से कुछ मात्रा तक स्वार्थपूर्ण व्यक्ति है और उसका समूचा विकास समाज मे ही हो पाता है अन्यथा नही। जिस प्राणी का पूर्ण विकास ही समाज मे सम्भव हो, उसके लिए समाज तथा उसका विकास कितनी महत्वपूर्ण वस्तु है, यह समझाने की आवश्यकता ही नही रहती। और इस समाज का सगठन तथा विकास किस प्रकार से होना चाहिए ? इस प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर यह है कि जिस समाज मे मानव, मानव के रूप मे पूर्णरूप से विकसित हो सके, वही समाज सभ्य तथा सुसस्कृत समझा जाना चाहिए।

मानव को यदि उपयुक्त परिस्थितिया न मिले तो उसका विकास विकृत जाता है। जैसे समाज मे आवश्यकता-पूर्ति के लिए व्यापार-सगठन का

प्रादुर्भाव हुआ। व्यापारी काफी समय तक समाज की इस सेवा को सुचारु रूप से करता रहा। समाज ने उसके ठीक ढग से विकसित होने के लिए वातावरण पैदा नही किया। एक तरफ उस पर सन्देह किया जाने लगा, दूसरी तरफ उसे रुपया ऐठने के लिए सुविधा मिलने लगी। फल यह हुआ कि व्यापारी 'शाईलाक' कहा जाने लगा। वह समाज का शोषक बन गया और सारे विश्व मे किसान तथा मजदूर को व्यापारी व साहूकार से बचाना एक समस्या बन गई।

इसी प्रकार प्रारभ मे प्रजा को सुखी व सन्तुष्ट रखने के लिए राजा बनाया गया, परन्तु समाज ने उस पर पर्याप्त नियत्रण नहीं रखा और वही राजा जार, पीटर, लुई १८, हलाकू खा, चगेजखा आदि-आदि के रूपो मे प्रकट हुआ।

हमने रुपये को जन्म दिया अपने हित के लिए, परन्तु रुपया हमारा स्वामी बन गया। मानवता रुपये मे बिकने लगी। हमने मशीन बनाई अपनी सेवा के लिए, परन्तु वह भी हमारी स्वामिनी बन गई और लगी ग्रामो का शोषण करने। धर्म के उपदेश, कानून का भय व नियत्रण, शिक्षा इत्यादि सब उपाय असफल से हुए दीखते है।

समाज बना, बढा, विकसित हुआ, पनपा, परन्तु इसने कोई ऐसा स्थायी सगठन नही बनाया जिसमे मानवता को पूर्ण रूप मे विकसित होने की सुविधा मिलती। राबर्ट ओवन, रूसो, मार्क्स, थामस मूर इत्यादि सब एक ऐसे समाज के निर्माण के नुस्खे सोचते रहे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सबके नुस्खो की अपेक्षा यदि कोई नुस्खा ज्यादा लम्बे काल के लिया टिका है, और साथ-साथ ही जिसकी धारणा व जिसका क्षेत्र विस्तृत होता गया है, तो वह है राबर्ट ओवन का बनाया हुआ नुस्खा—सहकारिता।

जिस सहकारिता का वर्तमान युग मे १०० वर्ष पहले कारखाने के शोषित मजदूरो की सहायता के लिए जन्म हुआ था, वह आज एक विश्वव्यापी आदोलन बन चुका है। इसने आज मानव-जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नही छोड़ा। सारा विश्व आज इस आदोलन की ओर आशा भरे नेत्रो से निहार रहा है। समाजवाद (साम्यवाद) ही नही वरन अमरीका, इग्लैड जैसे साम्राज्यवादी तथा पूजीवादी देशो को भी अब सहकारिता मे ही भविष्य दिखाई दे रहा है। "लोकराज", "स्नेह" और "मानवता" इसके तीन प्रधान गुण है। और यही गुण सहकारिता को मानव-समाज के लिए सर्वोपयोगी पद्धति बना देते है।

आचार्य विनोबा ने तो सहकारिता को और भी परिमार्जित तथा परिष्कृत करके सर्वोदय का एकमात्र वाहन बना दिया है। आज सहकारिता का क्षेत्र अर्थ न रहकर मानव-जीवन हो रहा है। आज 'कल्याणकारी राज्य' स्थापित करने के घोष उठते हे। योजना का तुमुल नाद हो रहा है। हर कार्य मे जनता की इच्छा को पहचानने की चेष्टा की जा रही है। उधर आणविक तथा उदजन बमो के निर्माण से एक वीभत्स विनाश मानव-समाज की ओर घूर रहा है। पूजीपति तथा शक्ति-सम्पन्न देशो को इन विनाशकारी पथो से हटाना कोई सुगम कार्य नही दीखता।

ऐसी स्थिति मे मानव का चित्त व्याकुल हो रहा हे। उसकी दैवी प्रवृत्तियो के विकसित होने मे इस प्रकार की आसुरी परिस्थितिया विघ्न डाल रही है। यदि हमने मानव के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना है तो प्रेम और स्वेच्छा से ही सब काम करने की नीव डालनी होगी।

"स्वेच्छया स्वीकृतो बन्धो निर्बधायोपकल्पते," वाली स्वतत्रता की स्थापना के लिए एक अनुशासनपूर्ण जीवन की परिपाटी डालनी होगी। योजना ऊपर से नीचे को जाने वाली न होकर ऊर्ध्वगामिनी बनानी होगी। इस प्रकार की परिस्थितिया समाज मे तभी लाई जा सकती है जबकि हम सहकारिता द्वारा ही मौलिक इकाइयो का सगठन करे। जब प्रेम, स्वेच्छा तथा मानवता के नाते यह इकाइया बनकर तहसील, जिला तथा प्रान्तीय सघो मे मीनार की नाई बनती जायगी तभी एक ऐसा वातावरण बनेगा जिसमे मानवता और मानव का पूर्ण विकास हो पायगा।

सामाजिक विकास के लिए प्रथमावश्यकता होती है सामाजिक सगठन की। एक सामाजिक सगठन को सफलतापूर्वक चलाने के लिए उसमे व्यक्ति का स्वेच्छा से आना जरूरी हे। किसी कानून अथवा हिसा की शक्ति के दबाव के अधीन बना सगठन मानव की उन्नति नही कर सकता, क्योकि विवशता का वातावरण उसके विरुद्ध विद्रोह की सतप्त ज्वालाओ को जन्म देता है। अत व्यक्ति की अपनी इच्छा सामाजिक सगठन के लिए एक परमावश्यक आधार-शिला है। कानून द्वारा जबरदस्ती ठूसी गई पचायते अथवा अन्य सगठन स्वेच्छा के परमावश्यक आधार बिना प्रगति नही कर सकते और वे पगु हो जाते है। इससे स्पष्ट है कि ऐसा सामाजिक सगठन सहकारिता के आधार पर ही निर्मित

ाकर सामाजिक विकास को सभव तथा सफल बना सकता है।

इस पुस्तक मे हमने सहकारिता के आर्थिक जगत मे सफल होने का वर्णन किया है। इसमे सन्देह नही कि आज के युग का [illegible] अर्थ ही है। जीवन का ापदण्ड ही आज अर्थ रह गया है। बाइबिल की यह बात कोई झूठ नहीं कि ानव केवल रोटी द्वारा ही नही जीता। उसके जीवन मे प्रेम, स्नेह, त्याग, ेवा, तपस्या आदि और कई अन्य आवश्यक [illegible] हैं, जिनके बिना मानव-ीवन शुष्क तथा प्राणहीन-सा हो जायगा। मानव की तीन भूखें तो प्रकट ही ै—उदर की, शरीर की और आत्मा की। हम लोग केवल उदर की भूख को ही विशिष्ट समझते है। उसके बाद शरीर की देखते हैं। आत्मा की भूख से तो ्म प्राय विमुख से होकर उसे भूल चुके हैं। [illegible] के बिना मानव तो ़ड जाने वाली दुर्गंधयुक्त देहमात्र है। मानव मे जितनी ऊँची भावनाएँ हैं, वह ात्मा की भूख ही है। इस आत्मा की भूख से उत्पन्न होने वाली भावनाएँ ही ानव को मानव तथा एक विकासोन्मुख [illegible] बनाती हैं। इस आत्म-त्व को पहचाने बिना केवल उदर तथा शरीर की भूख के लिए जीने वाला मानव ा किसी दिन भी आदमखोर बन सकता है। [illegible] उदरपूर्ति तथा काम-ासना की तृप्ति के लिए किसी भी दूसरे मानव की हत्या कर सकता है। इस ात्म-तत्व के अस्तित्व को जो नहीं पहचानते उन्हें आसुरी वृत्ति वाले कहा ाता है। यही आसुरी तथा दैवी वृत्ति का भेद है।

राज्यो के तत्र इस सामाजिक विकास के ही प्रदर्शन है। दैवी सम्पत्ति को जब हम भूल जाते है, तभी सामाजिक पतन आरभ हो जाता है और मानव-समाज को बहुधा हिसा के भयावह गड्ढे मे धकेल दिया जाता है।

एक राष्ट्र का दूसरे से द्वेष, सन्देह तथा शोषण करने की इच्छा सब इसी कारण से होते है और यह इस बात का प्रमाण है कि हम दैवी सम्पत्ति से विमुख हो चुके है।

इस दैवी सम्पत्ति के उत्थान तथा जागरण के लिए विभिन्न मतो का प्रादुर्भाव हुआ। धर्म की प्रेरणा से मानव ने पर्याप्त मात्रा मे तथा पर्याप्त काल तक दैवी सम्पत्ति को अपनाया। परन्तु धर्म उक्त सम्पत्ति का समाजीकरण न कर पाया। यह व्यक्ति तक ही सीमित रहा। इसका फल यह हुआ कि आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जगत इससे अछूता रह गया। शक्ति अर्थ तथा राजनीति मे थी। फल यह हुआ कि जब कभी राजनीति तथा अर्थ मे दैवी-शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियो की प्रधानता रही तब-तब समाज मे दैवी सम्पदाओ को प्रोत्साहन मिलता रहा, और जब कभी यही शक्ति आसुरी शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियो के हाथ चली गई तो प्रोत्साहन आसुरी सम्पदाओ को मिलता रहा और मानव मानव के रक्त का प्यासा बनता गया।

मानव-समाज आज भी आतकित है। वह आणविक तथा उद्जन बमो की—भविष्य के गर्भ मे छिपी हुई—वर्षा से डर रहा है। निर्बल का सबल, निर्धन का धनिक तथा मूर्ख व अपठित का बुद्धिमान व पण्डित द्वारा आज भी शोषण जारी है। कडे कानूनो तथा करो के बोझ ने मानव को और अधिक निष्ठुर, चालाक तथा स्वार्थी बना दिया है। मानव-समाज व्याकुल तथा चचल हो उठा है। वह चाहता है कोई ऐसा साधन—जहा मानव मानव की तरह सुख, सतोष तथा शान्ति से रह सके, जहा उसकी दैवी सम्पदाओ का विकास हो, जहा व्यक्ति-व्यक्ति का, जाति-जाति का, देश-देश का तथा धर्म-धर्म का द्वन्द्व न रह कर सारा विश्व एक समाज बन जाय और हमारा आपसी नाता हो मानवता। जब मानव-समाज इस ढग से विकसित होकर आयोजित होगा तभी मानव व्यक्ति के रूप मे अपनी दैवी सम्पदाओ को विकसित कर सकेगा।

प्रथम अध्याय मे जो सहकारिता की परिभाषा दी गई है, उसके अनुशीलन से यह स्पष्ट ही है कि सहकारिता ही एक ऐसी पद्धति है जो सामाजिक, आर्थिक

तथा राजनीतिक क्षेत्रो मे भी दैवी सम्पदाओ के प्रोत्साहन के यज्ञमय कार्य को चरितार्थ करती है। अत समाज का यथोचित विकास तभी सम्भव है जबकि सहकारिता की पद्धति तथा विचार-प्रणाली को हर क्षेत्र मे अपनाया जाय। सहकारिता एक साधन व पथ है, जिसका लक्ष्य सर्वोदय है। अत. सहकारिता का प्रवेश सामाजिकता मे परमावश्यक है। अभी तक हमने राजनीतिक झझावात से डरकर सहकारिता के क्षेत्र को सकीर्ण रखा है। परन्तु जब तक यह सकीर्णता की दीवारे गिरा नही दी जाती, तब तक न तो सहकारिता ही पनप सकती है और न सामाजिक विकास का लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

आज के युग की यह माग है कि सहकारी पद्धति को ही हर सामाजिक कार्य मे अपनाया जाय। अन्यथा हमारा सामाजिक विकास सभव नही होगा। जिस प्रकार ठीक ढग से सामाजिक विकास के बिना दैवी सम्पदाओ का व्यक्ति मे विकास नही हो पाता, उसी तरह सहकारी पद्धति को अपनाये बिना दैवी-सम्पदा सम्पन्न समाज विकसित नही हो सकता।

सामाजिक विकास स्वयमेव एक व्यापक विषय है। अत इस छोटे से अध्याय मे इसके सम्बन्ध मे केवल सकेत मात्र ही किया जाना सम्भव हो सका है।

: ११ :

सहकारी-संगठन

विश्व तथा भारत की सहकारिता के इतिहास से यह प्रत्यक्ष दीखता है कि निर्बलो ने आत्म-निर्भरता, स्वावलम्बन तथा शोषण से सरक्षण के लिए सहकारिता के साधन को खोज निकाला था। परन्तु सहकारिता का यह प्रयोग अभी तक बिखरा रहा और भिन्न-भिन्न स्थलो पर भिन्न-भिन्न रूप मे विकसित हुआ। कतिपय देशो ने इन एकागी प्रयोगो को सगठित तथा एकीकृत करने का प्रयत्न किया है। भारत मे सहकारी अधिकोषण (बैंकिग) का एकीकरण हुआ, परन्तु

शेष प्रयोग बिखरे हुए ही रहे। रिजर्व बैंक की ग्रामीण-साख-सर्वेक्षण समिति ने एकीकृत सहकारी सगठन को सहकारिता की सफलता का एकमात्र साधन बताया। परन्तु उस सगठन-सूत्र को व्यवहार मे लाने की योजना मे ऋण, व्यापार, कृषि आदि को एकीकृत करने के स्थान पर इन सब कार्यों को सगठित करने का ही प्रयास है। इसमे सन्देह नही कि कृषि, व्यापार, उद्योग, भण्डार तथा अधिकोष के पारस्परिक सम्बन्ध की आवश्यकता को आककर उनको अन्योन्याश्रित तरीके से विकसित करने का कार्यक्रम बनाया गया है। और सहकारी समितियो तथा विभाग के कर्मचारी-समुदाय के प्रशिक्षण को भी विकसित करने पर काफी जोर दिया गया है। समय इतनी द्रुत गति से चल रहा है कि योजना बनाने वाले विद्वान भी जब कार्यक्रम बनाते हे तो वह चाहते हैं कि नए आन्दोलन भी समय की गति के अनुपात से अग्रसर हो। परन्तु किसी भी पेड को ऊपर से आरोपित करना सभव नही, उसे तो बीज द्वारा भूमि मे परिस्फुटित होकर, मूल पक्का करके ऊपर उठने की पद्धति आती है। भवन-निर्माण कला अभी तक तो बुनियाद से ऊपर को उसारने की है। और यदि ऊपर से कभी भवन-निर्माण किया जाने भी लगेगा, तो भी उसकी दृढता तो मूल पर ही निर्भर होगी। यदि मकान पर छत न हो या छत टपकती हो, तो उसकी नीव भी कच्ची पड जाती है। अत स्पष्ट है कि भवन नीव पर आधारित होता हे और उस नीव तथा भवन की रक्षा उसकी छत द्वारा होती है। परन्तु हमारे राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलन उठाने का काम अभी तक ऊपर से ही किया जाता है और यही कारण है कि बहुत अच्छे तथा जनता के हितार्थ परिचालित आन्दोलन जड नही पकड पाते। सहकारी आन्दोलन की भी यही दशा है। इसमे सन्देह नहीं कि एक आधी शताब्दी से इसका प्रयोग हमारे देश मे चल रहा है और हर दशाब्दी में प्रयोग की सफलता का मूल्याकन किया जाता रहा है। हर मूल्याकन मे परिणामस्वरूप निष्कर्ष आन्दोलन की असफलता ही निकलता रहा है।

ग्राम्य-ऋण-सर्वेक्षण समिति के सुझाव भी आन्दोलन को ऊपर से तथा राज्य की सहायता से पुष्ट करना चाहते है। और अपने इस प्रस्ताव की पुष्टी मे उन्होने निम्न तर्क उपस्थित किया है—

"सहकारी आन्दोलन वित्त के दृष्टिकोण से हमेशा निर्बल रहा है। इसके आगे दो ही विकल्प ह कि या तो यह अनिश्चित काल तक निर्बल रहे

और अपनी सहायता स्वय न कर सके या इसको बाहर से इतनी आर्थिक सहायता दी जाय कि अन्ततोगत्वा वह केवल अपनी सहायता ही न कर सके, वरन् उसे बाहर की किसी सहायता की भी आवश्यकता न रहे।"

यह सहायता यदि पर्याप्त, आन्दोलन को पुष्ट करने वाली तथा निहित-स्वार्थो के दबाव को सहन करने वाली होती है, तो यह सहकार से ही आनी चाहिए।

जहा तक रोग के निदान का सम्बन्ध है, वह तो पूर्णतया ठीक है। परन्तु जो आर्थिक सहायता सरकार से जिस ढग से मिलने वाली है, और उसके उपलक्ष्य मे नियत्रणादि के अधिकार जो सरकार को सस्था मे मिलेगे, उनसे क्या आन्दोलन मूल से लोकतन्त्री तथा सहकारिता के सिद्धान्तो पर विकसित होने को सहायता प्राप्त करेगा ? यह एक टेढा प्रश्न है। क्योकि आन्दोलन की उपादेयता से तो किसी को इन्कार नही हो सकता परन्तु जिनके आश्रय से यह आन्दोलन चलना है, उनकी योग्यता तथा क्षमता भी एक बडा ही महत्त्वशाली पक्ष है। दूसरा प्रश्न इस क्रम मे यह उठता है कि क्या सहकारिता की पद्धति किसी एक वर्ग या व्यक्ति को त्याज्य कह सकती है, या उसका ध्येय सबका सहयोग प्राप्त करना है। स्वार्थवश कोई व्यक्ति यदि ऐसे आन्दोलन से दूर रहे या उसका विरोध करे तो और बात है, परन्तु 'सहयोग' जो साम्य-योग की मजिल तक पहुचाने वाला सफल अहिसात्मक, स्नेह-सम्पन्न केवल मात्र मार्ग है, मे किसी व्यक्ति, वर्ग, जाति आदि के लिए सम्मिलित होना वर्जित नही हो सकता।

निहित स्वार्थो तथा शोषक वर्गो से सघर्ष करके अथवा कानून द्वारा उनकी शोषण-पद्धति पर रोक लगाकर किसान व मजदूर के भला करने की पद्धतिया विश्व मे बहुत-सी प्रचलित है। इनका हिसात्मक नर्तन हम रूस तथा ध्वसात्मक फल अन्य कई देशो मे देख चुके है। इन पर अधिक विचार न करते हुए हम उदाहरणार्थ स्वतन्त्रता के उपरान्त भूमि-समस्या को देखे तो एक ओर कानून द्वारा प्रयत्न हुआ, दूसरी ओर तैलगाना मे क्रान्तिकारी आन्दोलन चला। इन कार्यो से द्वेष तथा सघर्ष की ज्वाला भडकी। और एक बार तो भय हो गया कि कही देश हिसात्मक क्रान्ति की ज्वालाओ मे परिवेष्टित न हो जाय। उसी समय सतप्त भूमि पर अहिसात्मक विचार-पद्धति की अमृत वर्षा करने वाले सन्त विनोबा ने तैलगाना का रास्ता पकडा। और सहयोग की मौलिक भावनाओ

से अभिप्रेरित होकर उन निहित स्वार्थों के समक्ष समस्या-पूर्ति का प्रश्न रखा जिनके विरुद्ध क्रान्ति का एक बवण्डर उठा था, और जो अपने उक्त स्वार्थों के बचाने की होड मे मानो जीवन की बाजी लगाकर उठ खडे हुए थे। हृदय परिवर्तन हुआ। आन्तरिक सहयोग की भावना जागृत हो उठी। स्नेह से ओतप्रोत भूदान का यज्ञमय कार्य गतिमान हो उठा। साम्यवादी, जो हिंसात्मक क्रान्ति के अनुगामी थे हँसे, काग्रेसी जो कानून के अस्त्र को ही पूर्ण शक्ति सम्पन्न समझते थे, कुछ सदेहात्मक विवेचना करने लगे। परन्तु वही आन्दोलन आज सारे विश्व को एक नव-ज्योति दिखाने जा रहा है। वस्तुत किसी भी आन्दोलन को केवल उसकी सफलता से नहीं वरन् उसकी सिद्धान्त-परायणता से आका जाता है।

मानव स्वभाव से ही दैवी-सम्पत्ति सम्पन्न प्राणी है। वह द्वेष तब करता है जब हम उसके भावो का आदर करने के स्थान पर उनका तिरस्कार करते है। भूदान आन्दोलन ने यह सिद्ध कर दिया कि निहित-स्वार्थो को भी अहिंसा तथा स्नेह द्वारा जीता जा सकता है। उनके दैवी स्वभाव को जागृत किया जा सकता है। और वही निहित स्वार्थ-सम्पन्न-व्यक्ति हृदय परिवर्तन होने पर उदार होकर स्वय समाज के हित मे अपने अतिशय स्वार्थ का परित्याग कर देते है। कानून तो केवल ऐसे भावो के पुष्टिकरण का साधन मात्र हो सकता है, वह उनकी सहायता कर सकता है, ऐसे भावो को प्रोत्साहित कर सकता है परतु उसमे ऐसे भावो को जागृत करने की क्षमता नही होती।

ऐसे भावो तथा विचारो की जागृति के लिए प्रेरणा तो ऊपर से मिल सकती है, परन्तु जब वह आन्दोलन का स्वरूप धारण करे तब उसका मूल तथा उसपर प्रभुता जनता की दृढ चट्टान मे होनी आवश्यक होती है। अत प्रेरणा, सहायता, तथा प्रोत्साहन तो सरकार से प्राप्त होना आवश्यक है। परन्तु यह सब ऐसे ढग से होना चाहिए कि आन्दोलन का मूल जनता मे रहे तथा उसमे प्रभुता भी जनता की रहे।

दूसरे इस अहिंसात्मक आन्दोलन का एक आवश्यक अग है स्वेच्छा। इसमे सदस्यो का सम्मिलन-सहयोग तथा इसमे वित्त का लगाना आदि कार्य स्वेच्छा से होने आवश्यक है। राज्य की आय करो द्वारा होती है। कर स्वेच्छा से नही दिए जाते। इन करो द्वारा प्राप्त धन जनता से स्वेच्छा द्वारा नही आता, अत इस

प्रकार की आय मे एक अनुपयुक्त भाव का समावेश रहता है।

पिछले अध्याय मे लिखा जा चुका है कि सरकार की आर्थिक सहायता प्रत्यक्ष रूप से न आकर अधिकोष द्वारा आय तो अधिक सुगम, लाभदायक तथा उपयोगी हो सकती है। परन्तु सबसे श्रेष्ठ तरीका तो विनोबा का सम्पत्ति-दान है जिस ढग से समाज-हित के लिए धन का त्याग तथा निस्वार्थ-भाव से उपयोग किया जा सकता है१ और यदि ठीक ढग से समस्या का हल ढूढा जाय और जनता को समझाया जाय तो पर्याप्त मात्रा मे जनता से धन प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही होगी।

ग्राम्य-साख-सर्वेक्षण समिति ने जिस एकीकृत प्रणाली का सुझाव दिया है वह वस्तुतः सगठित प्रणाली ही है, एकीकृत प्रणाली नही। व्यापार, भण्डार, कृषि, ऋण, उद्योग तथा अधिकोषण आदि के सम्बन्धो की विवेचना तथा उनकी स्थापना का तो प्रयत्न है परन्तु एकीकृत पद्धति मे तो उनका सामजस्य करना पडता है। और हर प्रकार की सहकारी समिति का मूल तो ग्राम की समिति है, जिसका बहुद्देश्यीय स्वरूप पिछले अध्याय मे दिया जा चुका है। उस स्वरूप मे अधिकोषण का वर्णन नही है। ग्राम्य-स्तर पर भी अधिकोषण का कार्य है जो ऋण के आदान-प्रदान से कुछ अधिक है। गावो मे अधिकोषण का विशेष कार्य हुण्डियो का आदान-प्रदान होता है। चैको का काम तो ग्राम्य-स्तर पर कुछ उलझन वाला होगा। शनै-शनै विद्या-प्रसार तथा योग्यता-प्राप्ति पर यह कार्य भी हाथ मे लिया जा सकता है। परन्तु हुण्डियो का जिला-स्तर तथा राज्य-स्तर के बैक की योजना के अधीन हाथ मे लिया जाना आवश्यक है। इससे एक ओर तो अधिकोषण-कार्य ग्राम्य-स्तर पर पहुच जायगा और दूसरी ओर उक्त स्तर पर व्यापार आदि के सब कार्यो मे बडी सहायता प्राप्त होगी। यह हुण्डिया महत्तम ऋण-सीमा द्वारा नियन्त्रित होगी। अर्थात् कुल बैक द्वारा प्रदत्त ऋण तथा प्राप्तव्य हुण्डियो की राशि महत्तम ऋण सीमा से बढने न दी जायगी। इसके लिए एक खाता हर बहुद्देश्यीय सहकारी समिति का रखा जायगा। सहकारी सगठन की इस प्रकार की बहुद्देश्यीय सहकारी समिति मूल की इकाई होगी। यही वस्तुत सारे सहकारी संगठन की नीव होगी। इस नीव पर ही ऊपर का भवन खडा किया जायगा।

मूल के स्तर की यह सहकारी समितियां भले ही वह ग्राम की हो अथवा

नगर की, ऊपर ताल्लुका अथवा तहसील-स्तर मे सगठित की जायगी। साधारणतया तो इनका क्षेत्रीय सगठन प्रवन्ध सम्वन्धी ऐसे क्षेत्रीय विभाजन के अनुसार ही होना चाहिए परन्तु यह कोई पक्का नियम नही हो सकता। क्योकि इस सगठन के लिए तो जनता की सुविधा पर प्रमुख विचार होगा। इस सुविधा के अनुसार ही उक्त क्षेत्रो को छोटा-वडा किया जा सकता है। यदि कार्य सुचारुतया सम्पादित होना हो तो लगभग १० प्रारभिक वहुद्देश्यीय सहकारी समितियो का इस स्तर पर एक सघ होना चाहिए। यह सघ सदस्य सहकारी समितियो के सव कार्यो को सगठित करेगा। जहा तक अधिकोषरण का सम्बन्ध है इसके दो विचार है। एक तो यह कि अधिकोषरण का कार्य पृथक् हो, परन्तु स्वतत्र रूप से हर तहसील या उक्त क्षेत्र मे अधिकोष स्थापित करना अथवा जिला व राज्य के सहकारी अधिकोष की शाखा स्थापित करना इसलिए कठिन होगा कि वेतन आदि पर व्यय तो अधिक होगा और व्यवसाय पर्याप्त नही होगा। कुछ तहसीले ऐसी हो सकती है जहा व्यवसाय हो, परन्तु वह व्यवसाय वही होगा जहा नगर हो और उस कार्य के लिए नागरिक अधिकोष हो सकते है। परन्तु इस स्तर पर यदि सघ का ही एक विभाग इस कार्य को सभाले तो उसके कई एक लाभ होगे। इस स्तर पर सघ के कार्यो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार हो सकता है।

(१) प्रारभिक वहुद्देश्यीय सहकारी समितियो को परचून विक्री के लिए माल सग्रह करना तथा उन तक पहुचाना,

(२) प्रारभिक वहुद्देश्यीय सहकारी समितियो के उत्पादन के उस भाग का जो समिति क्षेत्र की आवश्यकताओ से अधिक हो, का सग्रह तथा विक्रय,

(३) प्रारभिक समितियो के लिए वाछित मात्रा मे ऋरण उपलव्ध करवाना,

(४) प्रारभिक समितियो के उद्योग तथा कृषि सम्वन्धी आवश्यक उपकरणो का प्रवन्ध करना। चूकि आन्दोलन लोकतत्री होना चाहिए इसलिए प्रारभिक समितियो की मत्रणा तथा देख-रेख आदि का कार्य भी इन सघो के पास रहना चाहिए। अत निम्न कार्य भी इन्ही के क्षेत्र मे रहेगा।

(क) प्रारभिक समितियो को मत्रणा,

(ख) प्रारभिक समितियो का हिसाव-किताव और उसकी जाच पडताल,

(ग) प्रारभिक समितियो का परीक्षरण व निरीक्षरण,

(घ) प्रशिक्षरण का प्रवन्ध तथा सहकारी सम्मेलनो का आयोजन,

(ङ) क्षेत्र के सहकारी कार्यो की योजना बनाना,

(च) सहकारी कार्य तथा ज्ञान के विकास हेतु अनुसन्धान क्षेत्र खोलना।

इनमे सब कार्य आय वाले नही है। कुछ ऐसे कार्य है जो वर्तमान दशा मे महत्व-पूर्ण हैं। यह कार्य जब ये समितिया अथवा ऊपर के सघ करेगे तो उनको प्रारभिक दशा मे सरकार से इसके लिए उपयुक्त आर्थिक सहायता मिलनी आवश्यक है। कुछ समय के पश्चात् इन सघो के पास निधिया (फड) जमा हो जायगी। इसी काम के लिए सदस्य-समितियो से शुल्क भी प्राप्त होता जायगा। इस स्तर पर आय-व्यय का अनुमान केवल साकेतिक हो सकता है। तो भी इस ओर सकेत करना इसलिए आवश्यक है कि पाठक इस सुझाव की व्यावहारिकता पर विवेचना-पूर्ण विचार कर सके।

आय—वार्षिक

१. सघ के थोक आयात व निर्यात व्यापार पर कमीशन द्वारा आय— (यह अनुमान ४०,००० जनसख्या के लिए १० लाख लागत के वार्षिक व्यापार पर ३ प्रतिशत के दर पर किया गया है।)	३०,०००)
२ उद्योग-धन्धो तथा अन्य उत्पादन के व्यापार द्वारा—	३०००)
३ निरीक्षण, परीक्षण शुल्क लाभ के १०% पर १०००) की सीमा सहित	५०००)
४ एक लाख रुपया जो समितियो के पास ऋण रहेगा पर ब्याज १% प्रति वर्ष के दर	१०००)
कुल जोड	३९,०००

व्यय—वार्षिक

१ मन्त्री या सचिव २००) मासिक पर		२४००)
२ हिसाब रखने वाला १५०) मासिक पर		१८००)
३ निरीक्षक १५०)	,, ,,	१८००)
४ अकाउटेंट १००)	,, ,,	१२००)
५ अधिकोषाधिकारी २००)	,, ,,	२४००)
६. विक्रेता ८०)	,, ,,	९६०)

७ भण्डारी ८०)	मासिक पर	६६०)
८ ४ चपरासी ४०)	,, ,,	१६२०)
६ शेष मिश्रित व्यय		५०००)
१० अनुसधान सम्मेलनादि		५०००)
११ प्रारम्भिक समितियो को लाभ		२०००)
१२ सुरक्षित कोप ५०,०००) की सीमा सहित		२५००)
१३ सर्व-सहायता कोप		२५००)
१४ भवन-निर्माण कोष		२५००)
१५ जिला सुरक्षित कोप		२०००)
	कुल जोड	३६,६४०)

जहा तक इस सघ के चालू धन का सवध है वह भाग-धन विक्रय, अमानतो, ऋण तथा सरकारी सहायता द्वारा सगृहीत होगा । इसका अनुमान मोटे तौर पर यो हो सकता है

१ सदस्य समितियो द्वारा भाग २५% भाग-धन के आधार पर		५०,०००)
२ अमानते		५०,०००)
३ ऋण		२००,०००)
४ तहसील पचायतो द्वारा सरकार का भाग		१०,०००)
	कुल जोड	३१०,०००)

क्योकि सघ की महत्तम ऋण सीमा आमतौर पर सत्वाधीन पूजी का दस गुणा होती है अत दो-तीन लाख का ऋण कोई अधिक नही होगा और इस ऋण मे से एक लाख तो ऋण मे लगा रहेगा और ढाई लाख से वर्ष मे दस लाख का व्यापार करना कठिन नही होना चाहिए ।

जिला-स्तर—इस स्तर पर अधिकोषण कार्य एकीकृत नही रह सकेगा । क्योकि यह कार्य इतना व्यापक तथा शेष कार्यो के लिए इतना आवश्यक है कि इसका कुशलतापूर्वक होना सारे आन्दोलन के लिए बहुत ही आवश्यक है । इस विपय पर पर्याप्त विचार सवन्धित अध्याय मे किया जा चुका है कि जिला-स्तर के सहकारी अधिकोष पृथक् हो या वह राज्य सहकारी बैंक की शाखाए मात्र

हो। इनका इस स्तर पर शेष कार्यों के साथ इकट्ठा रखना अधिकोपण कार्य की कुशलता के हित मे सहायक नही होगा। परन्तु इस स्तर पर भी अधिकोपण को छोड अन्य सब कार्यों का एकीकरण कई एक विचारो से उपयुक्त ही नही वरन् आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि जिला अधिकोप तथा जिला सहकारी सघ का पारस्परिक सबध सजीव और दृढ रहे। इसके लिए सुभाव यह है कि जिला सहकारी सघ की प्रबन्धक समिति के दो सदस्य जिला सहकारी अधिकोप की प्रबन्धक समिति पर और अधिकोष की प्रबन्धक समिति के दो सदस्य सहकारी सघ की प्रबन्धक समिति पर होने चाहिए और दोनो सस्थाओ की प्रबन्धक समितियो की एक सम्मिलित त्रैमासिक बैठक होनी चाहिए ताकि उनके कार्यों, योजनाओ तथा नीतियो मे पूरा-पूरा ताल-मेल रहे।

अधिकोष के सबध मे इस जगह केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि जिला सहकारी अधिकोप की सदस्यता केवल तहसील स्तर के सहकारी सघो तथा नागरिक अधिकोपो तक ही सीमित रहनी चाहिए। व्यक्तिगत सदस्य वे केवल नाम के लिए ही होने चाहिए, ताकि मध्यस्थ-निर्णय का लाभ कर्मचारियो आदि के विरुद्ध प्राप्त हो सके। यदि एक जिला मे दस तहसील सघ हो और इतने ही नागरिक अधिकोप हो तो जिला अधिकोप के २० सदस्य होगे। एक सघ यदि ५०००) के और एक नागरिक अधिकोप २५००) के भाग ले तो भाग-धन द्वारा जिला सहकारी अधिकोप को ७५,०००) प्राप्त होगा जो पर्याप्त होना चाहिए। सरकार भी जिला पचायत द्वारा २५००) के भाग ले सकती है और उक्त जिला पचायत के तीन प्रतिनिधि प्रबन्धक समिति पर लिए जा सकते है। साधारण अधिकोपण कार्य के साथ इस सघ को नागरिक अधिकोपो तथा तहसील सघो के बैकिग कार्य का निरीक्षण भी करना होगा। यदि यह बैक वर्ष मे बीस लाख रुपये का लेन-देन करे और उसे उन पर १% प्रति वर्ष भी प्राप्त हो तो २०,०००) का लाभ होगा। भूमि बन्धक अधिकोपण कार्य भी इसी के साथ सलग्न रहना ठीक होगा। केवल ब्याज इतनी आय से ही अधिकोप का सफलतापूर्वक चलना कठिन नही होगा।

का मन्दिर तो शरीर ही है। इसका भी अपने स्थान पर बडा ही महत्व है। दूसरा जिला-स्तर पर जो सहकारी सघ होगा वही आन्दोलन का इस स्थान पर शरीर होगा। जिला सहकारी विकास सघ का निर्माण जिला के अन्तर्गत तहसील अथवा ताल्लुका सहकारी सघो द्वारा होगा। जिलो के आकार का कोई निर्धारित स्वरूप नही है। इनके आकार वडे भिन्न होते है। एक-एक ज़िला के ताल्लुके या तहसीलो की सख्या एक सी नही है। हो सकता है कि कभी समय आवे जब कि इन आकारो को किसी निश्चित धारणा की वजह से पुन सगठित किया जाय परन्तु यह इस पुस्तक का विषय नही। अत अनुमान के लिए दस तहसीलो अथवा दस तहसील-सगटनो के सगटन का ही एक ज़िला सगठन रखा गया है। जिला सहकारी विकास सघ के लिए हर तहसील सघ अपने भाग का २०% भाग रूप यदि दे तो दस तहसील सघो से एक लाख तक का भाग-धन एकत्रित होना कठिन नही होगा। यह मात्रा तहसील सघो की सख्या पर निर्भर होगी। चालू पूजी के लिए इनका यही एक साधन होगा।

कुछ भाग जिला सहकारी अधिकोष भी लेगा परन्तु वैसे ही जिला अधिकोष मे यह सघ भाग लेगा। अत महत्तम ऋण-सीमा के निर्णय के लिए तो उसका लाभ हो जाएगा परन्तु वह रुपया सघ को अपने कार्य-हेतु उपलब्ध न होगा। १ लाख के भाग-धन पर सघ की महत्तम ऋण-सीमा १० लाख तक हो सकेगी। इस सघ के साधारणतया निम्न कार्य होगे —

(१) तहसील व ताल्लुका सघो का निरीक्षण एतदर्थ लाभ का ५% शुल्क लेना।

(२) सदस्य सघो को परिवहन की सहायता पहुचाना—अर्थात् ट्रक आदि का प्रबन्ध।

(३) सदस्य-सघो की आवश्यकताओ के अनुसार उन्हे माल पहुचाना और इस सेवा के लिए १% कमीशन लेना।

(४) हर प्रकार की सहकारिता के लिए पर्याप्त विशिष्ट मत्रणा तथा सहायता देना। इसके लिए सघ की विशिष्ट समितिया बनाना।

(५) सहकारी कार्यकर्ताओ के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना।

उपरोक्त १ व २ स्रोतो से पर्याप्त आय हो सकती है। यदि सघो के व्यापार का ५०% भी जिसका सघ द्वारा हो तो ५० हजार आय थोक व्यापार द्वारा हो

सकती है और १० हजार की आय स्रोत (१) से हो सकती है। फिर परिवहन विभाग द्वारा भी काफी आय होगी। इतनी आय से सुचारु रूप से काम चलाना कठिन नही हो सकता।

राज्य-स्तर—इस स्तर पर एक राज्य-सहकारी विकास सघ होगा और एक राज्य सहकारी अधिकोष। राज्य-सहकारी अधिकोष की सदस्यता जिला सहकारी अधिकोषो तक ही सीमित होगी और सहकारी विकास सघ की जिला सहकारी विकास सघो तक। इस स्तर पर कार्यों का विशेष ब्योरा देने की आवश्यकता नही क्योकि इस विषय पर पहले के अध्यायो मे विचार किया गया है। राजकीय सहायता इस स्तर-अधिकोष को रिजर्व बैंक द्वारा और विकास सघ को सहकारी अधिकोष द्वारा आनी चाहिए। सदस्य सघो की आवश्यकताओ का माल प्राप्त करवाने की इस स्तर पर ५% से अधिक कमीशन नही होनी चाहिए। राज्य के सहकारी अधिकोष तथा सहकारी विकास सघ को आपस मे भाग लेने चाहिए ताकि एक दूसरे की प्रबन्धक समिति पर एक दूसरे के प्रतिनिधि हो और ताल-मेल बना रहे। सहकारी-नीति निर्धारण के लिए एक सहकारी समिति का निर्माण होना चाहिए जिस पर राज्य सहकारी अधिकोष, राज्य-सहकारी विकास-सघ के प्रतिनिधि, सहकारी विभाग का उच्चाधिकारी तथा सहकारिता से सम्बधित मत्री सदस्य हो। यह केवल परामर्शदातृ समिति होगी।

इस प्रकार ग्राम से राज्य तक एक सुसम्बद्ध सगठन बन जायगा। इससे आगे सारे देश के लिए किसी सगठन की आवश्यकता नही दीखती। हा, देश की सहकारी नीति के निर्धारण के लिए एक अखिल देशीय परामर्शदातृ समिति का निर्माण राज्य की परामर्शदातृ समितियो द्वारा केन्द्र के सहकारी मत्री के अधीन हो सकता है। उनका सम्बन्ध इसी प्रकार की अन्य देशीय समितियो से स्थापित किया जा सकता है।

सहकारी सगठन को अब उचित महत्त्व देने का समय आ गया है। विश्व का मानव आज एक ऐसे सगठन के लिए तडप रहा है। राजनीति तथा तर्कवाद के विभिन्न विचारो के बवण्डर, हडतालो के युग, आणविक युद्धो की आशकाओ मे विश्व आज इस खोज मे है कि देश-देश, वर्ग-वर्ग तथा व्यक्ति-व्यक्ति के दरम्यान ईर्ष्या तथा द्वेष की खाई को पाटकर मानव को मानवता का पाठ पढाया

जाय और यह सब सहकारिता के सगठन द्वारा ही सभव हो सकता है। परन्तु सहयोग अथवा सहकारिता जिस छिन्न-भिन्न अवस्था मे है, उसी मे रहने दी जाएगी तो यह अपने ध्येय को प्राप्त नही कर सकेगी।

: १२ :

सहकारी-विभाग

सहकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव विवश जनता मे हुआ। कई देशो मे तो इसके प्रवर्तको को वडी यातनाए सहन करनी पडी। रावर्ट ओवन का इतिहास, अमरीका की कथाए, जारशाही रूस की कई घटनाए इस तथ्य की पोषक हैं। शासको तथा राज्यो ने तो इसे तव अपनाया जव शासको की तानाशाही, सामतशाही, पूजीवाद तथा किसान-मजदूर-शोषक नीति के विरुद्ध हिसापूर्ण क्रान्ति का भय उत्पन्न हो गया। इस भय के प्रभावाधीन तव शासकवर्ग ने सहयोग की कतिपय पद्धतियो को अपनाया। यह सव क्रान्ति को कुछ काल तक टालने के लिए किया गया। ऐसे विचारो के अधीन अपनाई गई सहकारिता वास्तविक सहयोग की मौलिक भावनाओ से कही दूर थी। इसलिए कि कही स्वतन्त्रता के वातावरण मे सहकारिता सहयोग की भावनाओ को विकसित करके समाज को साम्ययोग की ओर ले जाकर कही शासन-निरपेक्ष समाज के ध्येय को निकट लाकर शासकवर्ग की सत्ता को शिथिल न कर दे। शासकवर्ग ने पू जीवादियो, सामन्तो तथा शोपकवर्गो से साजिश करके सहकारिता को कानून के ऐसे बधनो मे जकड दिया कि उसका विकास कुण्ठित हो गया।

प्रारभ से ही सहकारिता के प्रचलन के सम्बन्ध मे दो विचार-धाराए चल रही है। एक यह कि सहकारिता शासन के नियन्त्रण से मुक्त रहकर विकसित होनी चाहिए और दूसरी यह कि सहकारिता को शासन की सहायता तथा शासन का नियन्त्रण प्राप्त होना चाहिए, इसके विना उसका विकास सभव नही। और जव तक राजकीय सहायता द्वारा इसे पुष्ट न किया जाय तव तक यह पनप नही
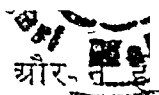
सकती। वस्तुत यह दोनो विचार-धाराए न तो पूर्णतया ठीक है और न ही पूरे तौर पर गलत। जब राज्य शासन सहकारिता-विरोधी नही वरन् सहकारिता-पोषक है तो ऐसे समय मे सहकारिता को शासन से किसी प्रकार के असहयोग की आवश्यकता नही। दूसरी ओर इस मौलिक विचार को नही भुलाया जा सकता कि सहकारिता प्रारभ से ही स्वावलम्वी होती है। और उसका परिवर्धन होता है स्वावलम्बन के द्वारा ही। जब राज्य कल्याणकारी तथा लोकतत्री हो तो यह राज्य के अपने हित मे है कि सहकारिता का विकास हो। परतु यह भी सहकारिता के विकास के हित मे है कि उसके मौलिक गुणो तथा उसके मौलिक स्वभाव से उसका विच्छेद न किया जाय, उसको दूर न ले जाया जाय। सहकारिता सहायता चाहती है, मत्रणा की उसे आवश्यकता है। धार्मिक प्रेरणा-सम्पन्न प्रचारको की आवश्यकता है। उसे आर्थिक तत्र मे धन की भी आवश्यकता है परन्तु वह किसी प्रकार का, किसी व्यक्ति-विशेष अथवा वर्ग-विशेष का धन अथवा प्रशासनिक शक्ति के रूप मे नियत्रण को सहन नही कर सकती। अकुश उसकी विकास गति को कुण्ठित अथवा अवरुद्ध कर देता है। अत. कानून और सरकार के सहकारी प्रगति मे क्या कर्तव्य हो सकते है, इसका निर्धारण उपरोक्त विचारधारा के अनुसार ही होना आवश्यक है। हम 'सहकारिता का उदय और विकास' मे देख चुके है कि भारत मे भी कानून के विना जो सहकारी सस्थाओ का प्रादुर्भाव तथा विकास हुआ या उसे कानून ने कुण्ठित किया, जैसे पजाव के होशियारपुर जिले के पजौर ग्राम की सहकारी समिति के इतिहास से विदित होगा। यदि सरकारी सहायता, कानून तथा सरकारी नियत्रण सहकारिता की प्रगति को कुण्ठित करे तो हमे विचार करना पड़ेगा कि इसका कारण क्या है ?

सहकारी आन्दोलन मे जव हम मानव तथा मानवता को महत्व देते है और धन को नही, वहा यदि हम शासन की शक्ति को महत्व देगे तो आन्दोलन की प्रगति अवश्य कुण्ठित होगी। क्योकि सहकारिता तो स्नेह के वीज से मानव-हृदय की भूमि मे स्वार्थ-त्याग की खाद की सहायता से उगती और पनपती है। वहा धन तथा शक्ति को कोई स्थान नही।

अत. सरकार को सहकारिता के विकास, प्रसार एव पोषण मे वडी सोच-समझ के साथ काम करना होगा। इसके कर्तव्यो का निश्चय करने मे भूल

होने से समस्त आन्दोलन का वडा अनर्थ हो सकता है। ऐसा अनर्थ होते कई स्थानो पर देखा गया है। जहा तक सरकार द्वारा आर्थिक सहायता का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे पिछले अध्यायो मे विचार किया गया है। इस अध्याय मे सरकार के शक्ति सम्वन्धी नियत्रण, जो कि आमतार पर सहकारी विभाग द्वारा होता है, पर ही विचार करना सगत होगा।

भारत मे सहकारी विभाग ही सहकारिता का मूल-स्रोत समझा जाता है। प्रेरणा-शक्ति विभाग मे ही निहित है और जहा कही जनता उक्त शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हे वहा कानूनो की कडाई तथा विभाग का सत्ता के लिए मोह आकर अडचने डाल देता हे। इसमे सदेह नही कि शासन ने गत ५७ वर्षो मे साधारणतया और स्वतन्त्रता के पश्चात् विशेष रूप से सहकारी आन्दोलन की वडी मूल्यवान आर्थिक तथा नीतिपरक सहायता की हे। परन्तु इस सहायता के होत हुए भी यदि आन्दोलन आगे नही वढ पाया तो इसके क्या कारण है। इन्ही कारणो की खोज के लिए समय-समय पर समितिया वनती रही और इस पक्ष की ओर सव समितियो ने ध्यान दिया। इनकी सिफारिशो का सक्षिप्त पुर्नविवरण समस्या के भली प्रकार समझने तथा सुलझाने के लिए लाभप्रद होगा। इसी समस्या के वारे मे सन् १९१४ मे 'मेल्केगन कमेटी ने लिखा था—

> "रजिस्ट्रार के कर्मचारियो मे वृद्धि होनी चाहिए। कृषि तथा उद्योग से सम्वन्धित विभाग के कार्यक्रम को सहकारिता से सम्वद्ध करना चाहिए और इनका अध्यक्ष एक होना चाहिए। इसके लिए एक विकासाध्यक्ष रखना चाहिए, जिसके अधीन यह काम दिए जा सकते हे। अभी तक इस विभाग को कृषि तथा शिक्षा की तरह महत्व प्राप्त नही हो सकता। हमने यह भी विश्वास पाया कि इस आन्दोलन को सरकार की गारटी प्राप्त है। विभिन्न अविश्वासो को भ्रामक सिद्ध करने के लिए कोई प्रयत्न नही किया जाता। सरकार को चाहिए कि सव अफसरो को यह स्पष्ट करे कि यह उनका कर्तव्य हे कि कोई भ्रममूलक धारणा जनता मे न रहने पाए।"

इसके पश्चात् सन् १९४६ मे सहकारी योजना समिति ने भी इस सम्वन्ध अपने सुझाव दिए जो सक्षेप मे इस प्रकार है —

> "यदि सहकारी आन्दोलन का विकास इसलिए करना हे कि इससे

देश का अधिक विकास हो, जनता का जीवन-स्तर ऊचा हो और उसकी आवश्यकताए पूरी हो तो सहकारी विभाग के कर्मचारी ठीक ढग के होने चाहिए। इन कर्मचारियो का साधारण जनता से सम्पर्क होना चाहिए और विकास-विभाग से भी इनका पूरा तालमेल होना चाहिए। यह कर्मचारी-समुदाय इतना योग्य होना चाहिए कि इस निरन्तर बढते जाने वाले उत्तरदायित्व को वह सहर्ष और योग्यता से सभाल सके। कर्मचारियो तथा पदाधिकारियो के ओहदे हर राज्य मे जहा तक सम्भव हो, एक से ही होने चाहिए।

"विभाग के नये सगठन मे रजिस्ट्रार का महत्व बढने वाला है अत उसकी नियुक्ति देखभालकर होनी चाहिए। इस कार्य मे उसकी विशेष रुचि होनी चाहिए। कार्यारम्भ करने के पूर्व उसे प्रशिक्षण मिलना चाहिए और दो वर्ष तक डिप्टी-रजिस्ट्रार या सह-रजिस्ट्रार के पद पर काम करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यह अधिकार इण्डियन सिविल सर्विस या प्रान्तीय सहकारी सर्विस का होना चाहिए। इस पद का महत्व भी बढा देना चाहिए और इसे उसी स्तर पर ले आना चाहिए जिस पर पुलिस या पी० डब्ल्यू० डी० के विभाग होते है। पद की अवधि दस वर्ष तक होनी चाहिए।

"सहकारी विभाग के कर्मचारियो को विशेष प्रशिक्षण मिलना चाहिए। इनके पदो के ग्रेड आदि राजस्व विभाग के कर्मचारियो के बराबर होने चाहिए ताकि अच्छी शिक्षा तथा योग्यता वाले व्यक्ति इन पदो पर आने के लिए लालायित हो।

सगठन तथा प्रचार-हेतु गैर-सहकारी तत्वो का उपयोग करना अधिक लाभदायक होता है। नि शुल्क प्रचारको की सेवाओ के क्रम को प्रोत्साहित करना इसमे जरूरी है।

"पर्यवेक्षण का कार्य राज्य-सहकारी-सघ द्वारा होना चाहिए और इसका खर्च निकालने के लिए राज्य को चाहिए कि उनको आर्थिक सहायता दे ताकि कार्य सुगमता से चले। सहकारी सघो को चाहिए कि अपने कार्य का विकेन्द्रीकरण करके स्थानीय सहकारी-सगठनो तथा सहकारी-समितियो द्वारा पर्यवेक्षण करवाए। बैको द्वारा पर्यवेक्षण की प्रथा को प्रोत्साहन

नही दिया जा सकता।

"निरीक्षण का कार्य पूर्ववत् विभाग द्वारा ही होते रहना चाहिए। यह कार्य गैर-सरकारी सस्थाओ को धीरे-धीरे ही सौंपा जा सकता है। लेखा-परीक्षण का कार्य भी विधान के अनुसार रजिस्ट्रार का ही कर्तव्य रहना चाहिए। इस कार्य को गैर-सरकारी सस्थाओ को सौंपने का अधिकार भी रजिस्ट्रार को ही होना चाहिए, लेकिन परीक्षण तथा पर्यवेक्षण का कार्य एक ही व्यक्ति के पास रहने देना ठीक नही। सहकारी समितियो का श्रेणी-विभाजन गजट मे प्रकाशित होना चाहिए। इसमे कोई सन्देह नही कि विकास के नये उत्तरदायित्व सहकारी सस्थाओ पर पडने से राज्य द्वारा पर्यवेक्षण कुछ काल तक स्वाभाविक ही होगा, परन्तु इसको धीरे-धीरे कम करते जाना चाहिए जिससे किसी समय यह पूर्णतया समाप्त हो जाय।

"गैर-सरकारी सस्थाओ तथा विकास सम्बन्धी सस्थाओ तथा विभागो का भी सहकारी सस्थाओ के साथ पूर्ण तालमेल रहना चाहिए।

"राज्य मे एक सहकारी समिति बननी चाहिए। इस सस्था को चाहिए कि सहकारिता द्वारा आर्थिक विकास करने की योजनाए बनाये और उन्हे कार्य रूप मे परिणत करने के लिए उपाय करे। सहकारी विभाग का मन्त्री इसका प्रधान बने और सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार सेक्रेटरी तथा सह-रजिस्ट्रार की श्रेणी का अफसर सहायक मन्त्री। इसमे गैर-सरकारी सदस्यो की सख्या अधिक होनी चाहिए। बैठक वर्ष मे दो बार हो। साथ ही इसकी एक प्रबन्धक-कमेटी भी होनी चाहिए, जिसका सारा खर्च सरकार दे। इस समिति के दो भाग होने चाहिए—एक समिति के सब कार्यो पर नियन्त्रण रखे और दूसरा राज्य शासन को मन्त्रणा दे।

"अखिल भारत सहकारी कौसिल विभिन्न राज्यो को मन्त्रणा दे ताकि विभिन्न प्रकार की सहकारिता के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श होता रहे। इस कौसिल के खर्च के लिए प्रथम पाच वर्षो मे २० लाख रुपया सरकार द्वारा मिलना चाहिए।"

इस विषय की चर्चा करते हुए प्रथम पचवर्षीय योजना मे इस प्रकार लिखा है:—

"अन्तिम रूप मे सहकारी समितियो की सफलता उनके अपने कार्यों के, चाहे वे उत्पादन, वित्त, क्रय-विक्रय और वितरण या निर्माण के बारे मे हो, सचालन की योग्यता तथा सदस्यो और समाज की तुष्टि पर निर्भर है।

"प्राय सहकारी समितियो का सगठन तथा प्रबन्ध उन लोगो के द्वारा होता है जिनमे अनुभव तथा योग्यता की कमी होती है। कई एक सहकारी समितियो और देश मे इस आन्दोलन की असफलता का यही कारण है। अत सहकारी समितियो को चाहिए कि वे योग्य व्यक्तियो की भर्ती करे और मौजूदा कार्यकर्त्ताओ को अच्छी ट्रेनिंग दिलवाये।

"आमतौर पर सब राज्यो मे सहकारी विभाग है और अब तक इन का काम केवल निरीक्षण, पडताल और प्रमाणीकरण तक सीमित रहा है। परन्तु अब जबकि सहकारिता आर्थिक योजना के लिए महत्वपूर्ण है, इसके लिए अधिकारियो को केवल आडिटर और इंस्पैक्टर ही नही बनना है बल्कि सहकारिता का महत्व भी जनता को समझाना है।"

सहकारिता के विषय पर अन्तिम रिपोर्ट ग्राम्य-ऋण-सर्वेक्षण समिति की। इस अध्याय के विषय से सम्बन्धित इस समिति के प्रस्ताव इस प्रकार है —

(१) सहकारी समितियो के कर्मचारी समुदाय तथा राजकीय सहकारी विभाग के कर्मचारी वर्ग एक जैसे हो।

(२) राज्य सरकारो को चाहिए कि वह सहकारी कर्मचारीवर्ग को दो भागो मे विभक्त करे—एक प्रशासनिक, दूसरे विशेषज्ञ। दोनो मे प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणिया यथावत रखी जावे, यथा—अर्थ-सबधी मामलो का मन्त्री, प्रबन्धक आदि।

(३) इन सब वर्गों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध केन्द्रीय सहकारी समिति के अधीन होना चाहिए।

(४) सहकारी विभाग का मुख्याधिकारी रजिस्ट्रार होता है। इस अधिकारी पर ही विभाग का प्रधान आधार होता है। सहकारी योजना समिति के अनुसार प्रस्ताव निम्न है—

"रजिस्ट्रार केवल विशेष योग्यता-सम्पन्न व्यक्ति नही होना चाहिए, वरन् वह स्वभाव मे इस प्रकार के लोक-प्रिय आन्दोलन को चलाने की

क्षमता रखने वाला होना चाहिए। पद सभालने से पूर्व इसे पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए और कम से कम दो वर्ष उसे डिप्टी अथवा सहायक रजिस्ट्रार के तौर पर काम करना चाहिए। प्रशिक्षण काल मे इसे अन्य राज्यो तथा अन्य देशो का सहकारिता सबधी अध्ययन करने का अवसर मिलना चाहिए •

"रजिस्ट्रार के बडे उत्तरदायित्वो को समक्ष रखते हुए जरूरी है कि इस अधिकारी को पुलिस व पी० डब्ल्यू० डी० के विभागाध्यक्षो के समान दर्जा व सम्मान प्राप्त हो। इसकी पदावधि १० वर्ष से कम नही होनी चाहिए और उसे प्राप्तव्य वेतन वृद्धि इसी पद पर मिल जानी चाहिए।"

(५) कृषि, कुटीर उद्योग तथा उद्योग आदि के कार्य सहकारिता से सबधित होने चाहिए और यदि यह सब विकास आयुक्त के अधीन सगठित हो तो रजिस्ट्रार भी विकास-आयुक्त के अधीन हो जाना चाहिए।

(६) पर्यवेक्षण-कार्य शिखरीय अधिकोप तथा केन्द्रीय अधिकोष के अधीन रहना चाहिए और जहा आन्दोलन विकसित हो चुका हो वहा एतदर्थ कर्मचारी-समुदाय भी शिखरीय सहकारी अधिकोप को ही रखना चाहिए। शेष राज्यो मे यह कर्मचारीवर्ग राज्य रखे परन्तु यह कर्मचारी समितियो को उधार दे दिये जाने चाहिए।

(७) हिसाब आडिट करना रजिस्ट्रार का वैधानिक कर्तव्य है। और उसे सब सहकारी समितियो के हिसाब वर्ष मे एक बार आडिट करने पडते हैं। यह कार्य सरकार के अर्थात् रजिस्ट्रार के अधीन ही रहना चाहिए।

(८) शिखरीय तथा जिला सहकारी अधिकोषो को साथ-साथ आडिट का प्रबन्ध करना चाहिए। यह कार्य वर्ष के मध्य मे होना चाहिए। यह पूर्ण ब्यौरेवार होना आवश्यक नही परन्तु यह विभागीय आडिट से छ मास पश्चात् होना चाहिए।

(९) आडिट-पद्धति सारे देश भर मे एक जैसी होनी चाहिए और आदर्श होनी चाहिए।

सरकार के सहकारी आन्दोलन के सम्बन्ध का दूसरा अग सहकारी अधिनियम है, परन्तु उस पर विचार सामूहिक तौर पर ही हो सकता है, क्योकि उसका सबध समूचे आन्दोलन से है। विभिन्न समितियो के प्रस्तावो के उपरि-

लिखित सिहावलोकन से प्रकट है कि आन्दोलन का मूल अभी जनता मे जमा नही है और इस सारे आन्दोलन की आधार-शिला रजिस्ट्रार ही है। इसमे सदेह नही कि भारत ने कतिपय विश्व-प्रसिद्ध रजिस्ट्रार पैदा किये है यथा कैलवर्ट, स्ट्रिक्लैड, डार्लिग रायन आदि। परन्तु कुछ अच्छे रजिस्ट्रार पैदा करने पर भी इतने बडे देश मे हम रजिस्ट्रारो की परपरा स्थापित नही कर सके। इसके कारणो की ओर समितियो ने ध्यान दिया है। परन्तु जब तक हम विभाग के कर्तव्यो का भली प्रकार निर्णय नही कर लेते तब तक ऐसी परपराओ की स्थापना सभव नही। सहकारिता के सिद्धान्तो तथा इसके इतिहास पर यदि हम भली प्रकार विचार करे तो स्वयमेव इस निष्कर्ष पर पहुचेगे कि यदि इस आदोलन को दृढ चट्टान की तरह स्थापित करना है तो प्रचार व प्रेरणा द्वारा जनता-जनार्दन के हृदयो मे सहकारिता के पावन भावो को जागृत करना होगा, उनका पोषण करना होगा। उनमे इस आन्दोलन के अधीन परिचालित समितियो को चलाने की योग्यता लानी होगी और अन्ततोगत्वा उनमे ही सारे आन्दोलन को निरन्तर विकसित करने तथा नियन्त्रित रखने के लिए उपयुक्त यन्त्र को निर्मित करना पडेगा।

अत सरकार के आगे दो ही रास्ते है कि—

(१) या तो वह आन्दोलन को स्वय इस होड के युग मे मथर गति से विकसित होने दे और विभाग के कार्य व कर्तव्य ऐसे ही रखे जैसे कि साझे निगमो मे होते है अथवा—

(२) सेवा-भाव से ओत-प्रोत प्रचारको का एक दल विभाग मे हो, जो सहकारिता को जनता का आन्दोलन एक निश्चित योजना के अधीन बना दे।

आज जब हमारे देश ने सविधान के अधीन सहकारिता को अपना ध्येय बना लिया है, सरकार का कर्तव्य ऊपर लिखे अनुसार होना चाहिए। सहकारिता को विकसित करने के लिए अब प्रतीक्षा नही की जा सकती। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना पडेगा। सर्वप्रथम कार्य तो जनता के सहकारी भावो को जागृत करना है। यह कार्य भी शासन को ही करना पडेगा। यह बड़ा ही गम्भीर, महत्वशाली तथा कठिन कार्य है। परन्तु बडे शोक से कहना पडता है कि इस परमावश्यक यत्न की ओर उतना ध्यान नही दिया जितना कि इस कार्य के लिए आवश्यक था। सबने यही सोचा कि कर्मचारियो को साधारण-

प्रशिक्षण देने से यह काम हो जायगा परन्तु इन परीक्षाओ के पास करने तथा डिग्रियो के सम्वन्ध मे सन् ३० मे श्री पी० सी० राय ने ठीक ही कहा था "एक साधारण डिग्री अविद्या को छिपाने का चोला मात्र है।" और फिर इस कर्मचारीवर्ग पर एक रजिस्ट्रार होता है जिसके सम्वन्ध मे की गई सिफारिशो पर आज तक कभी अमल नही किया गया। पूर्व इसके कि विभाग अथवा कर्मचारीवर्ग के सम्बन्ध मे कुछ लिखा जाय, यह आवश्यक है कि हम शासन के इस आन्दोलन के प्रति कर्तव्यो को सूत्र-वद्ध कर ले—

(१) शासन का आन्दोलन से सवध मत्रणा तथा सहायतापरक होना चाहिए।
(२) शासन को चाहिए कि विभाग के कर्मचारियो मे सहकारिता के प्रति पूर्ण निष्ठा उत्पन्न करे तथा उसको प्रोत्साहित करे।
(३) मत्रणा तथा सहायता करते समय शासन देखे कि वह मत्रणा इस लोकतत्रीय आन्दोलन को निर्बल तथा परावलम्वी वनाकर उसके स्वावलम्वी भावो को शिथिल न करे।
(४) आन्दोलन का नियत्रण पूर्णतया लोकतत्रीय रहे।
(५) समस्त आर्थिक समितियो को सहकारी ढाचे पर आयोजित करने मे प्रोत्साहन दे।
(६) सहकारिता मे द्वन्द्व और मुकाबिले को स्थान नही, वह लोकतत्रीय तरीको से नियत्रित आर्थिक पद्धति पर आश्रित होती है अत इस दिशा मे राज्य नीतियो, अधिनियमो व साहित्य द्वारा इस मूलाधार का प्रचार करता रहे।
(७) शासना के समस्त विभागो व कर्मचारियो को सहकारिता-समर्थक वनाया जाय।

यदि इन सात वातो पर सवका मतैक्य हो तो विभाग के कर्तव्यो तथा कार्यो का स्पष्टीकरण सुगम हो जायगा। आन्दोलन के साथ सरकार के सम्वन्धो तथा कर्मचारीवर्ग और आन्दोलन की आधारशिला रजिस्ट्रार ही है। रजिस्ट्रार का एक तो नामकरण भ्रम पैदा करने वाला है क्योकि उक्त अधिकारी आर्थिक [illegible] मे केवल उनके पजीकरण का काम करता है, सहकारिता मे उससे कही अधिक काम करना पडता हे। अत जव तक अधिकारी का यह नाम रहेगा सहकारी विभाग अपने वास्तविक कर्तव्यो को कभी भी पहचान नही सकता।

अतः इस सम्बन्ध मे सुझाव यह है कि पजीकरण का काम तो रजिस्ट्रार करे और भाषा मे उसका नाम भले ही पजीकार रहे परन्तु जो अधिकारी सारे आन्दोलन का अध्यक्ष हो उसका नाम "सहकारिता सचालक" अथवा "सहकारिता निर्देशक" अथवा "सहकारिता आयुक्त" रखा जाय। डैवलपमेंट कमिश्नर के अनुसार "कोआपरेटिव कमिश्नर" अर्थात् "सहकारी आयुक्त" नाम भी रखा जा सकता है।

आडिट करना

उक्त आयुक्त के अधीन एक अधिकारी पजीकार अर्थात् रजिस्ट्रार होगा और दूसरा होगा चीफ आडिटर। भारत मे आडिट करना विभाग का ही कार्य रहा है। यह कार्य पर्याप्त काल तक विभाग के अधीन रखना पडेगा। इसमे सन्देह नही कि अन्ततोगत्वा यह कर्तव्य सहकारी अधिकोष का होगा, परन्तु जब तक हमारा नैतिक उत्थान नही हो पाता और हम निस्वार्थ तथा निष्पक्ष होकर न्याय करने की आदत नही बना लेते तब तक विभागीय आडिट आवश्यक ही रहेगा। परन्तु जिस प्रकार चार्टर्ड अकाउण्टेण्टो को सरकारी मान्यता रहती है इसी प्रकार पूर्व अध्यायो मे वर्णित विधि के अनुसार प्रारम्भिक सहकारी समितियो तथा प्राथमिक सघो का आडिट तो बैक के अधीन रहेगा परन्तु आडिटरो की नियुक्ति उक्त अधिकोष उन व्यक्तियो मे से करेगा जो कि चीफ आडिटर द्वारा अनुमोदित हो। इन आडिटरो का साझा समुदाय हो और स्थानान्तरण का विधान रहे। इन आडिटरो के लिए एक आचरण पद्धति बनाई जाय जिस पर अमल न करने पर चीफ आडिटर का अनुमोदन वापस ले लिया जाय और अनुमोदित सूची से नाम हट जाने पर वह पहले स्वयमेव मुक्त हो जाय। जहा तक जिला सहकारी सघो, जिला अधिकोषो, राज्य सहकारी विकास सघो, तथा राज्य सहकारी बैंको के आडिट का सम्बन्ध है वह मुख्य आडिटर के अधीन रहेगा। वार्षिक पडताल तो चीफ आडिटर स्वय अथवा अपने स्टाफ द्वारा करे और छमाही आडिट समितियो अथवा रजिस्टर्ड आडिटरो द्वारा कराए।

और दूसरी शैली यह है कि जाच-पडताल का काम शिक्षात्मक हो, भूलो तथा अपराधो मे भेद को समक्ष रखकर काम किया जाय। भूलो को सुधारा जाय। भविष्य के लिए उनको मत्रणा दी जाय। उनकी लेखा रखने की विधि मे यथा-समय तथा यथावश्यक मत्रणा तथा सहायता दी जाती रहे। जहाँ जान-बूझ-

कर अपराध किया हो वही मामले को दण्डनीय समझा जाय। सहकारिता की भावना की पोषक पद्धति तो यही है। इस तरह आडिट का काम शासन तथा सस्थाओ द्वारा सगठित रूप से हो सकेगा।

पजीकरण

पजीकरण का केवल मात्र इतना काम है कि जो समितिया पजीकृत हो वह निगम हो जाती है और निगम के वैध अधिकार उसे प्राप्त हो जाते है। पजीकरण हेतु अधिक कर्मचारीवर्ग की आवश्यकता नही। यह कार्य राज्य के लिए केन्द्रित ही होना चाहिए। कार्य विकेन्द्रित होने से पजीकरण की आवश्यकताओ मे समानता नही रह सकती। पजीकार को नियमाधीन कुछ तालिकाए प्राप्त करनी चाहिए। विघटन की कार्रवाई भी इसी अधिकारी के अधीन रहनी चाहिए। पजीकार व उसके अधीनस्थ कर्मचारीवर्ग को सस्थाओ के निरीक्षण के अधिकार केवल इसलिए होने चाहिए कि वह पजीकरण की आवश्यकताओ की पूर्णता अथवा अपूर्णता को देख सके। इसलिए पजीकार के अधीन निरीक्षक अर्थात् इन्स्पैक्टर होने आवश्यक होगे।

प्रशिक्षण

प्रशिक्षण सहकारी आन्दोलन के लिए बडा ही आवश्यक अग है। यह कार्य जिस साधारण ढग से आजकल किया जाता है उससे काम सफल होने वाला नही। इसके लिए एक बडे विद्वान तथा सहकारी भावनाओ से ओतप्रोत अनुभवी व्यक्ति का होना आवश्यक है। इसके लिए सहकारी आयुक्त के अधीन एक सहकारी शिक्षा निर्देशक होना चाहिए। साहित्य निर्माण, प्रशिक्षण, सस्था सचालन, सहकारी-सम्मेलन, कार्यकर्ता तथा कर्मचारी शिक्षण आदि कार्य इस अधिकारी के अधीन रहना चाहिए।

प्रशिक्षण सस्थाए तो इस अधिकारी के अधीन रहनी चाहिए परन्तु शेष प्रशिक्षण-कार्य विभाग के शेष अधिकारियो से एकीकृत रहना चाहिए। प्रशिक्षण-पद्धति गाधी विचारधारानुसार आश्रम शैली से होनी चाहिए।

इस विभाग मे सहकारी समितियो को कानूनी परामर्श की बडी आवश्यकता है और यहा पर कानूनी मत्रणा भी सहकारितापरक होनी आवश्यक है। यह हर राज्य की योग्यता, आर्थिक-शक्ति तथा कार्य-भार पर निर्भर

होगा कि इस कार्य के लिए कोई पृथक् अधिकारी हो अथवा सहकारी शिक्षा निर्देशक ही इस कार्य के लिए उत्तरदायी रहेगा। साधारणतया सहकारी शिक्षा निर्देशक ही यदि कानूनी मन्त्रणा प्रदान करने का कार्य भी करे तो ठीक ही रहेगा।

सामान्य संगठन

विभाग के उपरोक्त अंगो का वर्णन इसलिए पृथक्-पृथक् किया गया है कि आमतौर पर आज तक इन्ही अंगो को ही विभाग का समूचा कार्य समझा जाता रहा और जो आन्दोलन का वास्तविक और परम महत्वशाली अंग है उसके नाम और कार्य दोनो स्वरूपो मे अवहेलना की जाती रही है। यह है विभाग के प्रचारात्मक, संगठनात्मक तथा मन्त्रणात्मक कर्तव्य। यही कार्य है जो विभाग का सामान्य अंग सम्पादित करेगे। हम ऊपर देख चुके है कि अब तक भारत मे इस जनकल्याणकारी आन्दोलन का केन्द्र-बिन्दु रजिस्ट्रार रहा है। अर्थ यह है कि राज्य की ओर से नियुक्त विभागाध्यक्ष पर ही वस्तुत आदोलन का अस्तित्व निर्भर रहता है। यह कैसे नियुक्त हो ? इसका नियत्रण कौन करे ? इसके लिए आवश्यक योग्यताए क्या हो ? नियुक्ति कितनी अवधि के लिए हो ? इसके अधिकार और कर्तव्य क्या हो ? आदि प्रश्न है जिन पर विचार होना आवश्यक तथा उपयुक्त ही है।

सहकारी संगठन के अध्याय मे यह सुझाव दिया जा चुका है कि देशीय-स्तर पर एक सहकारी समिति होगी। सहकारी आयुक्त की नियुक्ति मे इस समिति से मंत्रणा लेनी आवश्यक होगी। यह नियुक्ति सयोजन-सेवा-आयोग द्वारा होनी उपयुक्त नही। यदि इस अधिकारी की नियुक्ति ठीक ढग से हो तो सारा कार्य सुचारु रूप से चल सकेगा। अत इस पद के लिए निम्न बातो को ध्यान मे रखना उपयुक्त होगा—

(१) सहकारी-आयुक्त का दर्जा राज्य के अच्छे विभागाध्यक्षो से किसी भी दशा मे न्यून न हो।
(२) गामोद्योग का कार्य भी इसीके अधीन रहे।
(३) न्यूनतम शिक्षा अर्थशास्त्र की विशेषता सहित एम०ए० या एल०एल०बी० हो।
(४) न्यूनतम आयु ४० वर्ष हो।

(५) कम से कम ५ वर्ष सहकारी विभाग या किसी सहकारी सस्था मे काम किया हो ।
(६) सहकारिता पर कोई पुस्तक या खोजपूर्ण लेख लिखा हो ।
(७) किसी सहकारी सस्था का सचालन किया हो ।

उपरिलिखित योग्यता-सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति १० वर्ष से कम अवधि के लिए नही होनी चाहिए और राज्य को स्वय भी उक्त अवधि के अन्दर उसे कही तबदील नही करना चाहिए। इस अधिकारी पर नियन्त्रण सहकारी समिति का होना चाहिए। इस प्रकार के व्यक्ति की नियुक्ति से आधी से अधिक कठिनाइया हल हो जायगी ।

ग्रामोद्योग का काम सभालने के लिए सहकारी-आयुक्त के अधीन एक और निर्देशक रखा जायगा । उक्त आयुक्त के कर्तव्य तथा अधिकार काफी विस्तृत होगे। इसके अधीन जिन अधिकारियो के वर्णन किये गये है वह सब सहकारी आयुक्त के पूर्ण नियत्रणाधीन रहेगे । सामान्य कार्य के लिए आयुक्त का एक सहायक होना चाहिए जो योजना सम्बन्धी काम को देखे और शेष कार्य आयुक्त के अधीन रहे । इस के अधीन हर जिले मे एक जिला सहकारी अधिकारी तथा उसके अधीन सहकारी प्रचारक रखे जाय । यह अधिकारी आज के असिस्टैट रजिस्ट्रार तथा इसपेक्टर के स्थान पर होगे परन्तु इनके कर्तव्य रचनात्मक तथा यथानाम प्रचारात्मक होगे। बुनियादी स्तर पर के कार्यकर्ता को आज सुपरवाइजर अथवा सब इसपेक्टर कहा जाता है। नई योजना मे उसे सहकारी सगठनकर्ता कहना ही उचित होगा । इस तरह आडिट, पर्यवेक्षण, निरीक्षण, सगठन, प्रचार आदि सब कार्य आयुक्त के अधीन होते हुए भी एक अग का दूसरे पर रचनात्मक अकुश रहेगा और हर समिति तथा हर सहकारी कार्यकर्ता सामान्य विभाग को अपना सहायक सलाहकार तथा मित्र समझेगा । विभाग नौकरशाही की भावना से मुक्त होकर इस लोककल्याण-कारी आन्दोलन के सुरम्य भवन का निर्माता और पोषक बन जायगा ।

जहा तक सहकारी समितियो के कर्मचारी समुदाय का सम्बन्ध है उनका समस्त नियत्रण राज्य की सहकारी समिति द्वारा बनाये गए नियमो के अधीन होना चाहिए और उन्ही नियमाधीन उनका स्थानान्तरण होना चाहिए। श्रेयस्कर तो यह होगा कि जहा तक सभव हो यह नियम अखिल देशीय सहकारी समिति द्वारा अनुमोदित हो ताकि शनै-शनै सारे देश के लिए समान सहकारी पद्धति का

विकास होता चले। इस समिति का व्यय शासन को वहन करना चाहिए।

विभाग तथा कर्मचारी समुदाय के वर्णन मे प्रशिक्षण के विषय पर कुछ कहे बिना यह अध्याय अधूरा ही रहेगा। प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे ग्रामीण-ऋण-सर्वेक्षण समिति ने जो प्रस्ताव किये है वह बडे ही उपयोगी तथा व्यावहारिक है। उन पर अब अमल भी होने लगा है। परन्तु उन प्रस्तावो मे यदि एक दो बातो का और समावेश कर लिया जाय तो वह और अधिक उपयोगी और व्यावहारिक हो सकते है। इसमे पहला तो यह है कि प्रशिक्षण हिन्दी भाषा तथा स्थानीय भाषा मे हो। केवल अगरेजी मे प्रशिक्षण कार्यकर्ताओ के लिए ग्रामो मे उपयोगी सिद्ध नही हो सकता। दूसरा यह कि कार्यकर्ता को परीक्षा पास करने पर ही प्रशिक्षित समझ लेना भूल होगी। अत हर कार्यकर्ता का प्रशिक्षण तब पूर्ण समझना चाहिए जब कि वह अपने पदानुसार तथा तत्सम्वन्धित सहकारी समिति मे एक वर्ष सफलतापूर्वक काम कर ले। तीसरा परमावश्यक अग है कार्यकर्ताओ की जीवन शैली। उन्होने ग्रामो मे ग्रामीणो के साथ काम करना होता है। जब तक उनका रहन, सहन, आचार, वर्ताव ग्रामीणो जैसा तथा विकासोन्मुख न हो तब तक कार्यकर्ता सफल नही हो सकते। इस ध्येय की प्राप्ति की ओर भी पूरा ध्यान प्रशिक्षण काल मे ही देना होगा। सहकारी कार्यकर्ता जनता के ऐसे विश्वास-पात्र सेवक होने चाहिए जिनसे जनता हर मामले मे नि सकोच होकर सलाह ले सके।

जब तक सहकारी विभाग को ऐसा नैतिक, रचनात्मक, लोकप्रिय तथा विश्वासोत्पादक रग नही दिया जायगा तब तक इस आन्दोलन का सफल होना सभव नही दीखता।

अभी तक हमारी पूर्ण मान्यता सहकारिता मे नही दीखती अथवा सहकारिता के साथ-साथ पूजीवादी सस्थाओ के प्रोत्साहन तथा राष्ट्रीयकरण नीतियो का अवलम्बन नही हो सकता। यदि शासन ने सहकारिता को सफल वनाना है तो हर क्षेत्र मे सहकारी पद्धति को अपनाना पडेगा। विकास के वहुत से कार्य इस आन्दोलन के हवाले करने पडेगे।

शनै-शनै आन्दोलन निधियो का विकास हर कार्य के लिए करके स्वावलम्वी होता जायगा। शासन शनै-शनै अपना योग शिथिल करता जायगा और अन्तत.

आन्दोलन पूर्णतया स्वावलम्वी और लोकतत्री होकर शासन-तत्र को भी नई दिशाओ की ओर प्रवाहित कर सकेगा ।

: १३ :

सहकारिता और पंचायत-राज

यह तो प्रकट ही है कि सहकारिता मानव के पारस्परिक स्नेह मे उत्पन्न होकर निस्वार्थ पारम्परिक सहायता मे परिस्फुटित होती है। यह जनता की सुदृढ भित्ति से ऊपर उठती है। इसका जीवन के हर क्षेत्र से अटूट सम्वन्ध है। सदाचार इसका प्राणदायक अग है। इसके सरक्षण, परिवर्धन तथा पोषण के लिए एक अनुकूल राजनीतिक तथा प्रशासनिक वातावरण की आवश्यकता होती है। जब तक शासन-तन्त्र अनुकूल न हो तव तक सहकारिता का पनपना तथा स्थायी होना असभव ही होता है। राजाशाही एकतत्रीय शासन, पूजीवादी, सामन्तशाही व नौकरशाही सरकारो का मूलोद्देश्य ही भिन्न होता है। इनसे सहकारिता का सरक्षण व पोषण एक ऐसी वात हे जिसकी आशा करना मृगतृष्णा ही है। लोकतत्री शासन के सम्वन्ध मे भी दो विचारधाराए है। एक तो ऊपर की सरकार का वयस्क-मत द्वारा निर्माण होता हे और फिर वहा से शक्तियो का विकेन्द्रीकरण किया जाता है। दूसरी विचार-पद्धति वह है जो प्रारम्भिक शासनिक इकाई के शासन का निर्माण जनता की सहमति से करके वहा से आवश्यकतानुसार अधिक विस्तृत क्षेत्र के लिए शासन-तत्र का निर्माण करती है और एतदर्थ प्रारभिक इकाइया अपनी सुविधा तथा साझे कार्यो के लिए अपनी शक्तियो का हस्तान्तरण करती है। ऊपर से सत्ता के विकेद्रीकरण ी धारणा मूलत गलत है। क्योकि लोकतत्री पद्धति की प्रचलित धारणा मे नता, जिसमे पूर्ण प्रभुता निहित होती है, को केवल मत प्रदान के समय ही छा जाता हे, फिर उनका कोई जागृत सम्पर्क शासन-तत्र से नही रहता। वह जनता की दैनिक समस्याओ से अपरिचित रहते है। और श्री डार्लिग महोदय के कथनानुसार "ऊट की समस्या और अरव की ओर" वाली परिस्थिति-सी

हो जाती है। पचायत-राज की सरकारी पद्धति ही एक ऐसी पद्धति है जो सहकारिता की मौलिक धारणाओ तथा भावनाओ के पूर्णतया अनुकूल है। इसी प्रणाली के लक्षणो को व्यक्त करते हुए एक स्थान पर महात्मा गाधी ने लिखा है—

"असख्य ग्रामो को लेकर बने इस सगठन मे उत्तरोत्तर प्रवृद्धमान और विकासोन्मुख क्षेत्रो का समावेश रहेगा। व्यक्ति इसका केन्द्र होगा। यह व्यक्ति ग्राम के लिए सदा अपने को मिटा देने के लिए तैयार रहेगा। इसी तरह ग्राम, समूहो के लिए मर मिटने को तैयार रहेगे। व्यक्तियो की इकाई से बनी समष्टि एक सयुक्त रूप मे परिणत हो जायगी। उन व्यक्तियो मे निराशा पैदा नही होगी, वे अत्याचारी नही होगे, वे सदा विनयी होगे, और सदा सागर की-सी व्यापक वृत्ति की महिमा के भागी रहेगे, क्योकि वे उसके एक अविभाज्य अश है।"

यह सगठन किस प्रकार का होगा, उसकी भी सूत्र रूप मे महात्मा गाधी ने व्याख्या की है—

"भारत के सात लाख ग्राम है। हर ग्राम का सगठन उसके वासियो की इच्छा से होगा। इस प्रकार देश के लिए चालीस करोड के स्थान सात लाख मत होगे, अर्थात् हर ग्राम का एक मत होगा। यह ग्राम ही चुनाव द्वारा अपना जिला शासन नियुक्त करेगे। यह जिला शासन एक राष्ट्रपति चुनेगे जो राष्ट्र का प्रधान होगा।"

पिछले अध्यायो मे वर्णित सहकारी सगठन के ढाचे के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि यह तत्र उपरिलिखित पचायती सगठन के अनुकूल है। जहा आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रो मे सहयोग की मौलिक भावना को सहकारी तन्त्र विकसित करेगा, वहा प्रशासनिक न्याय तथा प्रबन्ध के क्षेत्रो मे पचायती तन्त्र उसी योग को विकसित करेगा। एक तन्त्र दूसरे का पूर्णतया सहायक होगा।

वस्तुत सहयोग की सामूहिक भावना के विकास के लिए यह दोनो अग अन्योन्याश्रित होते हुए परमावश्यक है। एक अग का दूसरे के बिना पनपना, विकसित होना तथा उन्नत होकर साम्ययोग की परमावस्था की ओर अग्रसर होना असभव है।

पचायती तथा सहकारी सगठन इस तरह ग्राम से तहसील, तहसील से जिला,

जिला से प्रान्त तक साथ-साथ विकसित होते जायगे । प्रान्त अथवा राज्य-स्तर पर सहकारिता तथा पचायती सगठनो के कर्तव्य काफी मात्रा मे व्यक्त तथा भिन्न होगे । तो भी हर स्तर पर यह आवश्यक होगा कि दोनो सगठनो का आपसी ताल-मेल रहे । इसके लिए व्यावहारिक यह क्रम रहेगा कि हर स्तर की सहकारी सभा की प्रवन्धक समिति मे उसी स्तर की पचायत का और हर स्तर की पचायत मे उसी स्तर की सहकारी समिति का प्रतिनिधि रहना चाहिए । राज्य तथा देश के मत्रिमण्डल मे सहकारिता के महत्वपूर्ण विषय के लिए मत्री होना चाहिए जो सहकारी सभा के प्रतिनिधियो मे से होना आवश्यक है ।

यह साथ-साथ चलने वाले दोनो सगठनो का पृथक् स्वरूप से अस्तित्व एक अन्तरिम काल की अवस्था हे । जब सहकारिता तथा पचायती विचारधाराए विकसित तथा उन्नत हो जायगी और प्रशासन-कार्य सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक कार्यो से भिन्न नही रहेगा तव यह दोनो सगठन एक हो जायगे । प्रशासन कार्य उस समय सहकारिता का ही एक अग हो जायगा । और जव समाज साम्यावस्था को प्राप्त होगा तब ही सहकारिता तथा पचायत राज प्रणालियो का चरम लक्ष्य प्राप्त होगा ।

इन पचायतो के तथा सहकारी समितियो के प्रतिनिधियो का विवरण सम्वन्धित अधिनियम मे रहेगा । निर्वाचन वहुमत द्वारा होगा, अथवा सहमति द्वारा अथवा नामजद करने से । यह व्यौरे की वाते हे परन्तु सहमति ही एक ऐसी पद्धति है जो सहकारिता के सिद्धान्तो पर पूरी उतरती है और जहा तक सभव हे इसी पद्धति का अनुसरण करना चाहिए ।

सहकारिता और पचायत-राज को इसलिए एक दूसरे के निकट लाना आवश्यक हे कि जिससे शनै-शनै ग्रामो का प्रवन्ध तथा अर्थ-सम्वन्धी ढाचा स्वावलम्वी होता जाय और शनै-शनै इस ढाचे का इतना एकीकरण हो जाय कि इनमे कोई भेद ही न रहे । ग्राम मानव समाज की एक ऐसी इकाई वन जाय कि ऊपर का हर प्रकार का सगठन इन पर ही आधारित हो और प्राचीन परिवार का स्थान ग्राम ले ले और व्यक्ति तथा समाज की ऐसी समष्टि वने कि वह नदी की नाई निरन्तर विकसित तथा प्रवाहित होती हुई सागर की शान्ति, असीमता तथा अपारता की ओर प्रवाहित होती रहे ।

: १४ :

उपसंहार

किसी भी विषय को ले उसके सम्बन्ध मे ज्ञान-जानकारी अपार और अगाध है। कोई भी यह दावा नही कर सकता कि उसे अमुक विषय का पूर्ण ज्ञान हो चुका। ज्यो-ज्यो अन्वेपण और खोज आगे बढ़ती है त्यो-त्यो उससे सम्बधित ज्ञान की विशालता अधिक व्यक्त तथा स्पष्ट होती जाती है। ठीक ऐसी ही दशा होती है जिस प्रकार कि अगाध समुद्र की वास्तविक स्थिति का पता ज्यो-ज्यो समुद्र मे प्रवेश करो अधिक लगता जाता है।

इस अपार रूप के साथ-साथ अन्वेषण और खोज द्वारा एक और अनुभव होने लगता है, वह यह कि हर विषय का ज्ञान अततोगत्वा हमे मानव और मानवता के निकट ले जाता है। यह आभास होने लगता हे कि समस्त विषयो का ज्ञान हमे एक अच्छा मानव बनने मे सहायता देता है और सब ज्ञानो का अन्तिम ध्येय एक ही है। यह प्रत्यक्ष दीखने लगता है और वह यह कि मानव को सुख और शान्ति की ओर अग्रसर किया जाय।

बस यही दशा सहकारिता सम्बन्धी ज्ञान की है। जब मै इस पुस्तक को समाप्त कर रहा हू तो ऐसा मालूम होता है कि मानो मैने सहकारिता के वास्तविक तथ्य को समझने का केवल एक प्रयासमात्र किया है और इस प्रयास से सहकारिता के ज्ञान के प्रवेश-द्वार तक पहुच पाया हू। यदि विषय का मनन जारी रहा तो इसके भावी ज्ञान का क्या स्वरूप होगा यह भविष्य ही बतला सकेगा। मुझे यह लिखते किचित् मात्र भी सकोच नही कि सहकारिता अथवा सहयोग की हमारी आज तक धारणा बडी सकीर्ण रही है, हालाकि यह स्वय एक उदार भावना की प्रतीक हे। इसका उदय उदारता मे ही होता है। यह उदारता मे ही पोषित तथा विकसित होती है। परन्तु जब इसके क्षेत्र को वर्ग तथा कानून की बेडियो मे जकड दिया जाता है, यह क्षुब्ध हो उठती है। पहले तो यह दब जाती है परन्तु फिर विस्फोट होता है। मानवता विद्रोह करती है। एक क्रान्ति आती है। कई बार हिसा को भी साथ लाती है। तब सत्रस्त मानव अपनी मौलिक उदार वृत्ति को पुन: पाने के लिए तडप उठता है। पुन मानवीय सहयोग

स्थापना के ऐसे विप्लवकारी प्रयत्न मे विवेक खो बैठता है। वह अपने कई एक भाइयो को ऐसी भावनाओ का शत्रु समझकर उनके सहार मे व्यस्त हो जाता है। फ्रास तथा रूसी क्रान्तिया एक ऐसे ही विस्फोट का फल थी।

सहकारिता का हनन तथा पतन उस समय होने लगता हे, जब कि व्यक्ति सत्ता सग्रह करने लगता है। स्वार्थ की भावना बढती जाती हे। वह समाज की प्रभु सत्ता का तिरस्कार करने लगता हे। बस इसी क्रम से स्नेह की पावन भावना से उत्पन्न सहयोग की भावना को हानि पहुचती हे। ससार मे यह क्रम आदि-काल से चला आता हे। यदि स्थायी तौर पर सहयोग नही पनप सका तो इसका कारण केवल यह रहा कि सहयोग तथा सहकारिता की कोई विशिष्ट पद्धति नही खोजी गई। केवल एक क्रान्ति तथा प्रति-क्राति का क्रम चलता रहा।

क्रान्ति और प्रति-क्रान्ति के इस क्रम मे विचारधारा को विकसित तथा परिष्कृत किया। यह श्रेय आज के युग को हे जब कि सहकार की भावना एक पद्धति के रूप मे विकसित हो रही है और मानव के लिए एक नया सन्देश दे रही है। राष्ट्रवाद समाजवाद, साम्यवाद, सामन्तवाद, पूजीवाद, आदि सब ऐसी पद्धत्तिया है जिनमे किसी व्यक्ति, किसी वर्ग, किसी जाति अथवा किसी देश को कुछ न कुछ भय अथवा खटका बना रहता है। जहा हिसा का आश्रय किसी न किसी रूप मे लेना ही पडता हे। परन्तु आज से सौ वर्ष पूर्व हिसा से आतकित तथा त्रसित समाज को सहकारिता ने ही ढाढस बधाई थी। तब से यह सदेश विश्व के कोने-कोने मे फैला। हर देश मे इसने अपना भिन्न-भिन्न स्वरूप विकसित करके मानव को शान्ति और सुख का एक नया सन्देश दिया। समाज-शास्त्रियो तथा विद्वानो ने इस पर विचार किया, ग्रन्थ रचे और आज सहकारिता विश्व का सबसे अधिक व्यापक आन्दोलन हे। परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता के बाद आचार्य विनोबा ने सहकारिता को एक ऐसा व्यक्त स्वरूप दे दिया जिसने आज राजनीति, अर्थ तथा समाज-शास्त्रियो को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। "जीने दो और जियो" के विनोबा कृत सूत्र मे सहकारिता का मूल भाव निहित है। भूदान, सम्पत्ति-दान, श्रमदान, बुद्धि-दान, ग्राम-दान आदि सब सहकारिता के स्तभ हें और इनके द्वारा ही सहकारिता का वास्तविक स्वरूप विकसित होगा।